वैदिक रामायण

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2016
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक :

भूमिका

हम देखते हैं कि भारतीय इतिहास जिन ग्रंथों में आज भी सुरक्षित है, उनमें रामायण एवं महाभारत मुख्य हैं। यहाँ समय-समय पर अनेक महापुरुषों का प्रादुर्भाव हुआ है। परन्तु जिन दो महापुरुषों के जीवन ने भारत के इतिहास एवं संस्कृति को सबसे अधिक प्रभावित किया है वे हैं श्रीराम एवं श्रीकृष्ण। राम कथा रामायण तक ही सीमित नहीं रही, अपितु यह महाभारत में भी वर्णित है। उसमें चार स्थल ऐसे हैं जहाँ रामकथा उपलब्ध है–रामोपाख्यान, आरण्यक पर्व, द्रोणपर्व और शांतिपर्व। इसके अतिरिक्त अनेक भारतीय भाषाओं में भी रामकथा लिखी गई जैसे– हिन्दी में 11, बंगला में 25, उड़िया में 6, मराठी में 8, तेलगु में 5 और तमिल में 12 रामायणें हैं। (हिन्दी शब्दकोष रामायण शब्द) परन्तु इन सब रामायणों में तुलसीदास कृत ''रामचरितमानस'' का विशेष स्थान है और यह जनता में सर्वप्रिय एवं सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। परन्तु बाल्मीकि रामायण प्राचीनतम एवं प्रामाणिक मानी जाती है।

रामकथा की लोकप्रियता का श्रेय उतना लेखकों को नहीं, जितना स्वयं राम को है। राम का नाम प्रत्येक भारतीय के जन-मानस में ओतप्रोत है। अतः राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने सत्य ही लिखा है–

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।।

श्रीराम दिग्विजयी थे, परन्तु साम्राज्यवादी नहीं। कालिदास ने अपने महाकाव्य 'रघुवंश' में लिखा है–

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव

जिस प्रकार मेघ पृथिवी से जल लेकर वर्षा द्वारा उसी को लौटा

देते हैं, उसी प्रकार सत्पुरुषों का लेना भी लौटाने के लिये होता है ।

श्रीराम ने इसी नीति का अनुसरण करते हुए बाली से किष्किंधा का राज्य जीत कर उसके छोटे भाई सुग्रीव को दे दिया और इसी प्रकार लंका को जीतकर रावण के सौतेले भाई विभीषण को दे दिया । वाल्मीकि रामायण और तुलसीकृत ''रामचरितमानस'' के अध्ययन से प्रतीत होता है कि श्रीराम ने धोबी के कहने पर माता सीता जी का परित्याग नहीं किया था परन्तु यह श्रीराम को कलंकित करने के लिये सारे समाज व राष्ट्र के लिये अभिशाप बन गया ।

वस्तुतः रामायण व महाभारत केवल धार्मिक ग्रंथ ही नहीं है, ये तो हमारे ऐतिहासिक राष्ट्रीय ग्रंथ हैं । भारत संतान की अन्तरात्मा में राष्ट्रीयता की ज्योति को प्रज्ज्वलित रखने के लिए इस प्रकार के ग्रंथों को स्कूलों व कॉलेजों में पढ़ाया जाना आवश्यक है ताकि जन-जन में सोई हुई राष्ट्रभावना जागृत हो और वह धर्मभावना से संयुक्त होकर प्रत्येक मनु पुत्र के आत्मकल्याण एवं विश्वकल्याण का मार्ग प्रशस्त करे । प्रिय पाठकगण ! इस भावना से प्रस्तुत ग्रंथरत्न सेवार्पित है । इस ग्रंथ की महत्ता पर प्रकाशा डालते हुए आचार्य श्री सुदर्शन जी लिखते हैं–

> **रामायण विश्व के लगभग 53 देशों में आज भी लोकप्रिय है । भारत के खेत खलिहानों, चौपालों से लेकर विश्वविद्यालय तक के लोग जीवन के इस महाकाव्य को बड़े प्रेम से गाते और पढ़ते हैं । यही कारण है कि जीवन का यह महाकाव्य भारत के घर-घर में लोगों का कंठहार बना हुआ है ।**
>
> –संगीतमय श्री रामकथा पृ० 3

जैसे अंधेरे में पड़े हुए कांच के टुकड़ों को जब शशिकिरणें चुपचाप धरती पर आकर चूमती हैं तो वे हीरकनी की भाँति दिखाई देने लगते हैं । इसी भाँति किसी कलाकार की बहुरंगीन कल्पना ऊर्जा जब काले अक्षरों को स्पर्श करती है तो वे स्वर्णिम बनकर अमर हो जाते हैं

जिन्हें देखने के लिए युग आँखें सदा तरसती हैं। यही बात प्रस्तुत ग्रंथ के विषय में पूर्णतः चरितार्थ होती है। मैंने तभी इसका नाम 'वैदिक रामायण' रखा है और इसमें ऐसे अनमोल रत्न जड़ने का प्रयास किया है जिसका मूल्य ताजमहल में लगे हुए रत्नों से भी कहीं अधिक है।

प्रिय पाठकगण! रामायण एक शिक्षाप्रद महाकाव्य है। परन्तु इसमें भी महाभारत महाकाव्य की भाँति मिलावट कर दी गई है। परन्तु मैंने अनेक रामायणों का तुलनात्मक अध्ययन करके इसको सत्य एवं तर्क की कसौटी पर कसा है। इसकी कुछ मुख्य घटनाओं पर पाखंड-खंडिनी पताका लहराकर प्रस्तुत ग्रंथ का वैदिकीकरण कर दिया गया है। इस प्रकार इसमें मिलावट का बहिष्कार कर दिया गया है। अतः यदि इसको सत्य रामायण कहा जाए तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी। इसके अतिरिक्त इसमें वाल्मीकि रामायण ज्ञानामृत और तुलसीकृत रामचरितमानस के अत्यंत महत्वपूर्ण 25 पद्यांशों को मिलाकर इसको सुन्दर एवं आकर्षक बना दिया गया है। इसके अतिरिक्त 25 प्रश्नोत्तरी का एक अध्याय भी जोड़ दिया गया ताकि पाठकगण और विशेषतः बच्चे इसका अध्ययन करके भारतीय संस्कृति से परिचित हो सकें। मैंने प्रस्तुत ग्रंथ की रचना सच्ची लगन और कड़ी मेहनत से की है। अतः पाठकगण को यह आवश्य पसंद आयेगी और इसके अध्ययन से उनके ज्ञान में भी अवश्य वृद्धि होगी।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री डॉ० जगदीश शास्त्री जी, रोशन लाल अग्रवाल जी, सत्यपाल मोदी जी, नरेश बंसल जी, जय किशन जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतज्ञता होगी। विशेषतः डॉ० जगदीश शास्त्री जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान

रूप में संयोजन न हो पाता। जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका भी कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ।

मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ और अपूर्ण है। अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 14.1.2016

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

प्रस्तावना

श्रीमान् धर्मपाल कपूर जी विगत अनेक वर्षों से लेखन कार्य में लगे हुए हैं। अब तक अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके हैं और अब भी सतत् इस कार्य में लगे हुए हैं। इसी शृंखला में **'वैदिक रामायण'** भी एक है। राम सनातन वैदिकधर्मी थे। वे वेदों के ज्ञात भी थे तथा वेदानुकूल आचरण भी करते थे। तत्कालीन विश्व में श्रीराम श्रेष्ठ गुण और कर्मयुक्त पुरुषों में उत्तम थे। इसी कारण महर्षि वाल्मीकि ने राम को अपने काव्य का नायक बनाया। परन्तु कालान्तर में वैदिकज्ञान हीन लोगों ने श्रद्धातिरेक में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को पुरुष की जगह परमात्मा के रूप में प्रस्तुत किया। राम को अवतार बता दिया। जो राम वेदानुसार प्रतिदिन 'ओ३म्', 'गायत्री' का जप, एवं ईश्वर उपासना करते थे, तुलसीदास आदि कवियों ने उसे उपास्य भगवान् बना दिया। उसकी सर्वशक्तिमता को सिद्ध करने के लिए अनेक चमत्कारिक घटनाएं जोड़ दी गईं। इस प्रकार वाल्मीकि के श्रेष्ठगुण सम्पन्न मर्यादा पुरुषोत्तम वैदिक राम को अवैदिक आचरण युक्त बना दिया गया। अन्धश्रद्धालुओं को तो चमत्कार बहुत भाता है। पर इस कारण स्वयं राम और रामायण की ऐतिहासिकता संदिग्ध हो गई। इस कारण विदेशी और विधर्मी ही नहीं अनेक भारतीय हिन्दू भी रामयाण को काल्पनिक उपन्यास मानने लगे हैं। राम और रावण को नायक-प्रतिनायक नहीं अपितु गुण-दोष के प्रतीक रूप में प्रस्तुत करने लगे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीराम को भगवान् मानने के कारण लोग राम के चरित्र का अनुकरण करने की जगह उसकी प्रतिमापूजन में लगे हैं। इस कारण अपने मानव जन्म को व्यर्थ कर रहे हैं। वहीं जो राम को प्रतीक मानते हैं वे राम, रामायण और वाल्मीकि सबके

पुरुषार्थ को नष्ट करके भारतीय इतिहास, सभ्यता और संस्कृति को हानि पहुँचा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में 'वैदिक रामायण' जैसी पुस्तक लोगों का सही मार्ग दर्शन कर सकती है। श्रीमान् धर्मपाल कपूर जो न केवल पुस्तक लिखते हैं अपितु स्वयं अपने धन से प्रकाशन करवा कर तथा जगह-जगह निःशुल्क वितरण भी करते रहते हैं। हम इनके स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

डॉ० जगदीश शास्त्री, एम.ए. पी-एच.डी.,
(वैदिक प्रवक्ता)
मकान नं. 875, गांव किशन गढ़
मनीमाजरा (चण्डीगढ़)
मो० 9417621632

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
	भूमिका	(iii)
	प्रस्तावना	(vii)
1.	विश्वविख्यात कवि तुलसीदास जी का संक्षिप्त जीवनपरिचय	1
2.	रामायण की संक्षिप्त कथा	
	(1) बालकाण्ड	4
	(2) अयोध्याकाण्ड	26
	(3) अरण्यकाण्ड	50
	(4) किष्किंधाकाण्ड	72
	(5) सुन्दरकाण्ड	79
	(6) युद्धकाण्ड	89
3.	रामचरित मानस का साहित्यिक सौंदर्य	105
4.	रामायण सत्य की कसौटी पर	112
5.	महर्षि वाल्मीकिरामायण ज्ञानामृत	123
6.	रामचरितमानस के 25 अत्यंत महत्वपूर्ण पद्यांशों की व्याख्या	127
7.	रामायणप्रश्नोत्तरी	143

1. विश्वविख्यात कवि तुलसीदास का संक्षिप्त जीवनपरिचय

यमुना तट पर बसा हुआ है छोटा सा एक गाम ।
जन्म भूमि जो तुलसी की है राजा पुर है नाम ।।
आत्माराम पिता थे जिनके माता जिनकी हुलसी ।
उन्हीं भाग्यवानों के घर सौभाग्य बने थे तुलसी ।।

बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में आत्माराम दूबे नामक एक ब्राह्मण अपनी पत्नी हुलसी के साथ रहते थे । दोनों ही पति-पत्नी राम भक्त थे । 1497 ई० में इस दम्पति के घर एक अलौकिक बालक का जन्म हुआ । बालक के जन्म के समय मुख में 32 दाँत थे और वह रोया नहीं अपितु उसके मुख से राम निकला । इसी कारण उसका नाम रामबोला रख दिया गया । उसका डील-डौल पाँच वर्ष के बालक के समान था ।

गंगा के तट पर सोरो में बाबा नरहरिदास का आश्रम था । कभी-कभी आत्मा राम दूबे अपनी धर्मपत्नी के साथ इसी आश्रम में कथा सुनने आया करते थे । एक दिन अचानक इस दम्पति को बहुत तेज बुखार चढ़ा और वे दोनों नरहरिदास के आश्रम में चले गये । काफी इलाज किया गया परन्तु सुबह दोनों की मृत्यु हो गई । इस प्रकार तुलसीदास अनाथ हो गये । उस समय तुलसीदास की आयु लगभग 5 वर्ष की थी। अनाथ होकर वे घर-घर भीख मांगते थे। बाबा नरहरिदास इस बालक को अयोध्या अपने साथ ले गये । वहाँ पर ही उसका यज्ञोपवीत संस्कार कराया । इस बालक ने बिना सिखाये ही गायत्रीमंत्र का उच्चारण कर दिया जिसे देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो गये । बाबा नरहरिदास ने दीक्षा दी और इसका नाम तुलसी दास रखा । बालक की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी और एक बार पाठ सुनकर उसे कण्ठस्थ हो जाता था । इसके बाद तुलसी दास ने वाणारस में 15 वर्ष तक वेद-वेदांग का अध्ययन शेष सनातक जी की छत्र-छाया में पूर्ण किया । इस प्रकार तुलसी के दीक्षा गुरु नरहरिदास थे और

विद्यागुरु शेष सनातन थे।

काशी से विद्या प्राप्त करके तुलसी दास अपने गुरु के पास सोरो लौट गये। यहाँ पर तुलसी दास का दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली से विवाह हो गया। वे अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम करते थे। विवाह के दो वर्ष पश्चात् उन्हीं के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम तारापति रखा गया। परन्तु दुर्भाग्य से दो वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई। इस कारण दम्पति शोक-सागर में डूब गये। एक दिन रत्नावली अपने भाई के साथ अपने मायके चली गई। जब इस बात का तुलसी दास को पता चला तो उन पर विपत्तियों का पहाड़ टूट गया। वे अपनी पत्नी रत्नावली को लेने ससुराल चल पड़े। जब रत्नावली को उनके आगमन का पता चला तो उसने तुलसी दास को फटकार लगाते हुए कहा–

लाज न आवत आप को दौरे आएहुं साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहो मैं नाथ।।
अस्थि चर्ममय देह ममता पै ऐसी प्रीति।
जो होती श्रीराम महँ होती न तो भवभीति।।

आप को शर्म नहीं जो पीछे-पीछे दौड़े चले आए। ऐसा भी क्या प्रेम हो गया? मेरे इस हाड़-मांस के शरीर से आपको जितना प्रेम है उतना प्रेम यदि राम के चरणों में होता तो आपको संसार का भय न होता। ये शब्द सुनकर तुलसी दास का हृदय ही बदल गया और वे वापिस चले गये। रत्नावली ने पूछा--''कहाँ जा रहे हो।'' इस पर तुलसी ने उत्तर दिया–

उस राम के चरणों में जिससे प्रेम करने का उपदेश अभी-अभी तुमने मुझे दिया है।

रत्नावली ने कहा कि आप बुरा मान गये और हाथ पकड़ लिया और कहा–''मैं आपको नहीं जाने दूंगी।'' इस पर तुलसीदास ने उत्तर दिया–

अब तुम मुझे नहीं रोक सकोगी। मेरी गृहस्थी आज पूरी हुई।

इस प्रकार इन शब्दों को सुनकर तुलसी दास का मोह भंग हो गया। उसका नारी प्रेम नारायण प्रेम में परिवर्तित हो गया। इसके

उपरांत उन्होंने गृहस्थ का परित्याग करके साधुवेश धारण किया। 12 पुस्तकों की रचना की जिनमें में से ''रामचरितमानस'', ''विनयपत्रिका'', ''दोहावली'', ''कवितावली'', ''गीतावली'' आदि मुख्य हैं। तुलसी दास जी की मृत्यु 1623 ई० में 126 वर्ष की आयु में हुई। कोई कहता है कि कोड से उनकी मृत्यु हुई और कोई कहता है प्लेग के कारण हुई। उनकी मृत्यु चाहे किसी भी कारण से हुई हो। परन्तु वे अंतिम क्षण तक पूरे होश में रहे और राम नाम उनकी जीभ पर रहा। मृत्यु के कुछ समय पूर्व उन्होंने निम्नलिखित छंद कहा–

राम नाम यश बारिन कै, भयहुं चाहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अब ही तुलसी सौन।।

राम के नाम का यश बखान कर अब मैं चुप होना चाहता हूँ। तुलसी के मुख में अब तुलसी और गंगाजल डालो। इन शब्दों के साथ यह महापुरुष एवं विश्वविख्यात कवि सदा के लिये मौन हो गये। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

सम्वत् सोलह सौ अस्सी असी गंग के तीर।
श्रावण सुकल सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर।।

अन्ततः एक आलोचक ने उचित ही कहा है–

वस्तुतः हिन्दी साहित्य में तुलसी का वही स्थान है जो उपवन में प्रथम पुष्प का, माला में प्रथम मनके का और आकाश में प्रथम नक्षत्र का होता है।

वस्तुतः तुलसीदास हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। अतः प्रसिद्ध इतिहासकार विनसेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'महान् अकबर' में लिखा है–

वह कवि हिन्दी-कविता-कानन में सबसे बड़ा वृक्ष है वे अपने समय में भारत के सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे, यहाँ तक कि उन्हें अकबर से बड़ा कहा जा सकता है।

2. रामायण की संक्षिप्त कथा

(1) बालकाण्ड

इक्ष्वाकु अयोध्या के प्रथम राजा थे। इसलिये ही इस कुल का नाम इक्ष्वाकुवंश पड़ा। इक्ष्वाकु के पुत्र का नाम कुक्षि था। कुक्षि से विकुक्षि का जन्म हुआ। विकुक्षि के पुत्र का नाम वाण था। वाण से अनरण्य हुए, अनरण्य से पृथु हुए और पृथु का त्रिशंकु नामक पुत्र हुआ। त्रिशंकु से युवानाश्व का जन्म हुआ। युवानाश्व से मान्धाता हुए। मान्धाता से सुसन्धि हुए। सुसन्धि के दो पुत्र हुए–देवसन्धि और प्रसेनजित। देवसन्धि से भरत हुए जिनके नाम इस देश का नाम आर्यावर्त से भारतवर्ष पड़ा।

भरत के असित हुये, असित से सगर हुये, सगर से असमंज और असमंज के पुत्र अंशुमान हुए। अंशुमान के दिलीप एवं दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए। भगीरथ के पुत्र ककुत्स्थ और ककुत्स्थ से रघु का जन्म हुआ। जिसके नाम पर इस वंश का नाम रघुवंश पड़ा। रघु के पुत्र प्रवृद्ध, प्रवृद्ध के पुत्र शङ्खण, शङ्खण के पुत्र, सुदर्शन, सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्ण, अग्निवर्ण के पुत्र शीघ्रण, शीघ्रण के पुत्र मरू, मरू के प्रशुश्रुक और प्रशुश्रुक से अम्बरीष एवं अम्बरीष से नहुष का जन्म हुआ। नहुष के ययाति, ययाति के नाभाग, नाभाग के अज और अज से राजा दशरथ का जन्म हुआ। दशरथ के चार पुत्र राम-लक्ष्मण- भरत और शत्रुघ्न हुये।

इतने बड़े महाराज दशरथ, बड़ा भारी उनका साम्राज्य, तीन-तीन रानियाँ, परन्तु सन्तान एक भी नहीं थी। महाराज सदा उदास रहा करते थे। उनकी यह इच्छा थी कि हमारे कोई लड़का होता तो अच्छा होता। महाराज की ऐसी दशा देख कर कुछ लोग इकट्ठे हुए। उन्होंने सोच कर यह निर्णय लिया कि ऋष्यशृंग को बुलाना चाहिए। ऋष्यशृंग ने अपनी पत्नी शांता के साथ अयोध्या नगरी में पदार्पण किया। यह देखकर सभी लोग बहुत प्रसन्न थे। जब ऋष्यशृंग

अपनी पत्नी शांता, राजा व रानियों सहित विशेष रूप से निर्मित यज्ञमण्डप में प्रवेश कर रहे थे तो उस समय वेद-पाठ चल रहा था। उन्होंने भी स्वयं यज्ञ में आहुतियाँ डाली।

प्रसाद स्वरूप खीर को तीन स्वर्ण कटोरों में रखा गया। वसिष्ठ ने राजा दशरथ को भीतर बुलाकर कहा—राजन्! अपनी रानियों को ये कटोरे दे दो। पहले कौशल्या को, फिर सुमित्रा को और अन्त में कैकेयी को। राजा ने उनके आदेश का पालन किया। रानियों ने कटोरे हाथ में लेकर वशिष्ठ और राजा दशरथ का चरण स्पर्श किया। तदुपरान्त वसिष्ठ ने उन्हें निर्देश देते हुए कहा कि वे उस खीर को केवल ऋष्यशृंग के चरण स्पर्श करने के पश्चात् ही खायें। क्योंकि उन्होंने ही यज्ञ किया है। रानियों ने पवित्र प्रसाद ग्रहण किया और ऋष्यशृंग के चरणस्पर्श कर अपने-अपने महलों में चली गईं।

समय बीता, रानियों के गर्भवती होने का समाचार महल में फैल गया। रानियों का वर्ण निखर आया। दसवाँ महीना लग गया। दासियाँ और धायें इस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा में थीं तथा बड़ी सावधानीपूर्वक रानियों की देखभाल कर रही थीं। इसी बीच उन्हें पता चला कि कौशल्या को प्रसवपीड़ा हो रही है, वे उनके महल की ओर दौड़ी। रास्ते में ही उन्हें महारानी के राजकुमार होने की सूचना मिल गई। दूसरे दिन कैकेयी के पुत्र हुआ। सम्पूर्ण रनिवास हर्ष और आनन्द से परिपूर्ण हो गया। अगले दिन सुमित्रा को भी प्रसवपीड़ा हुई और उसने जुड़वाँ पुत्रों को जन्म दिया।

ब्राह्मणों ने रीतिपूर्वक संस्कार आरम्भ किए। उन्होंने यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित कर यथोचित विधि के अनुसार उसमें आहुतियाँ दी। स्वर्ण-थालों पर चावल बिछाकर उन्हें रेशमी कपड़े से ढंका गया फिर गुरु वशिष्ठ के समक्ष उन पर शिशुओं को लिटाया गया। वसिष्ठ मुनि ने कहा, ''राजन्! कौशल्या का आनन्द बढ़ाने के लिए उत्पन्न यह बालक सम्पूर्ण मानवता को आनन्द प्रदान करेगा।'' अतः इसका नाम 'राम' अर्थात् 'आनन्द देने वाला' होगा।

फिर वसिष्ठ ने सुमित्रा के जुड़वाँ बच्चों को देखा। उन्होंने सोचा कि उन दोनों में से बड़ा बेटा तो शूरवीर, रणधीर और धन-समृद्ध होगा। उन्हें ज्ञात था कि वह विष्णु और उनकी पत्नी लक्ष्मी की सेवा में आनन्दित होगा, उसकी यह सेवा ही उसके प्राण होगी। अतः उसका नाम उन्होंने लक्ष्मण रखा। वसिष्ठ को मालूम था कि लक्ष्मण का छोटा भाई घोर शत्रु-संहारक होगा तथा अपने बड़े भाइयों के चरण चिह्नों का निश्चलतापूर्वक अनुगमन करेगा अतः उसे शत्रुघ्न नाम दिया।

फिर उन्होंने कैकेयी के आनन्दस्रोत पुत्र को निहारा। वसिष्ठ को ज्ञात था कि वह बालक सभी के हृदयों को प्रेम व आनन्द से आपूरित करेगा, वह अपनी धर्मपरायणता द्वारा सभी को चकित कर देगा, वह महान् दया और स्नेहपूर्वक, अपनी प्रजा पर शासन करेगा। अतः उसका नाम भरत रख दिया।

महल के अन्तःपुर में बालकों के पालन-पोषण एवं बड़े होने का समय पूरा होने पर जब वे तीन वर्ष के हुए तो उन्हें उनकी धायें खेल के मैदान में ले जाती थीं। जहाँ वे मन भर कर खेलते-कूदते थे। जब वे खेलकर लौटते थे तो मातायें उनका स्वागत कर महान् प्रेम व ध्यानपूर्वक उनका पालन करती थीं। एक दिन राजा दशरथ ने अपनी रानियों के साथ वार्तालाप में यह बताया कि यदि बालक धायों के साथ रहेंगे तो वे उचित शिक्षा नहीं पा सकेंगे। अतः उनकी शिक्षा के लिए शुभ समय निश्चित् किया गया, दीक्षा-संस्कार का शुभारम्भ करने के लिए गुरुओं को बुलाया गया।

उसी दिन से वे मनोहर बालक गुरुकुल में रहने लगे। उन्होंने बहुमूल्य राजसिक आभूषण उतारकर कमर पर एक साधारण सा दुपट्टा बाँध लिया तथा एक दुपट्टा गले में डाल लिया। चूंकि माता-पिता के स्नेहपूरित वातावरण में बालक शिक्षा में भलीभाँति प्रगति नहीं कर पाते। अतः वे रात दिन गुरुकुल में रह कर शिक्षा प्राप्त करने लगे क्योंकि गुरु की सेवा तथा उनके द्वारा प्रस्तुत उदाहरण के अनुकरण से अधिक सीखा जा सकता है। जो भी भोजन के रूप में

गुरु द्वारा प्रदान किया जाता था उसी से वे बालक अपनी क्षुधा शांत कर लेते थे। सत्यान्वेषी बालक ब्रह्मचारी के आदर्श का मूर्त रूप थे। जब माताओं को बालकों का वियोग सहन नहीं होता था तो वे उन्हें देखने गुरुकुल चली जाती थीं और बालकों की प्रगति देखकर अत्यंत प्रसन्न होती थीं।

गुरु भी अपने शिष्यों की परायणता तथा उत्साह को देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे। वे उनकी स्मरणशक्ति को देखकर चकित और हर्षित थे। उन्होंने देखा कि चारों बालकों में राम की विद्याध्ययन में विशेष रुचि थी। एक बार पाठ सुन लेने पर ही वे उसे तत्काल ग्रहण कर लेते थे और ज्यों का त्यों सुना देते थे।

वर्षों से पुत्रों के वियोग में व्यथित दशरथ की आँखों में खुशी के आँसू छलक आए। उन्होंने मंत्री को आदेश दिया कि वह रानियों को जाकर यह शुभ समाचार दे और उनसे कहे कि वे गुरु दक्षिणा लेकर आश्रम में आ जायें। सुमन्त तीव्र गति से महल की ओर चल दिए और रानियों को सूचित किया। उन्होंने सभी भेंट व उपहार तैयार करवाए और शीघ्र ही आश्रम में लौट आए। इसी बीच बालकों ने वसिष्ठ मुनि की आज्ञानुसार अपना सभी सामान बाँध लिया और फिर सारा सामान रथ पर रख दिया गया। अपने पिता के निर्देशानुसार बालकों ने वैदिक नियमानुसार गुरु की पूजा की, उन्हें भेंट दी तथा घर के लिए प्रस्थान हेतु आज्ञा मांगते हुए उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया।

राजा दशरथ प्रायः अपने राजकुमारों सहित मंत्रियों के साथ बैठकर अपने राजनैतिक, प्रशासन, न्यायिक विवादों तथा राज्य प्रशासन में नैतिक नियमों को व्यवहार में लाने पर विचार-विमर्श करते थे। वे अपने पितामहों तथा राजवंश के अन्य राजाओं की कथाएं सुनाकर यह बताते थे कि किस प्रकार उन्होंने अपनी प्रजा के प्रेम और निष्ठा को जीता, किस प्रकार देवताओं की ओर से उन्होंने 'दानवों' के साथ युद्ध किए तथा किस प्रकार उनके कार्यों में उन्हें परमात्मा का अनुग्रह और सहयोग मिला। इन कथाओं को सुनाकर राजा तथा पुत्र

दोनों ही बहुत प्रफुल्लित होते थे। कभी-कभी मंत्री लोग भी कथा सुनाया करते थे।

एक दिन महर्षि विश्वामित्र राजा दशरथ के राजभवन में पधारे। राजा दशरथ ने ऋषि को राजसिक सत्कार प्रदान किया। उन्होंने ऋषि के आने का कारण पूछा तथा उन्हें आश्वासन दिया कि वे उनकी छोटी-से-छोटी इच्छा पूर्ण करने को भी सदैव तत्पर हैं। उन्होंने अति श्रद्धापूर्वक घोषित किया कि ऋषि उन्हें जो भी आज्ञा देंगे वे उसे अवश्य पूर्ण करेंगे। वे तो ऋषि की सहायता करने को तत्पर हैं। इस पर विश्वामित्र ने उत्तर में अपना सिर हिला दिया।

यह सुनकर विश्वामित्र बहुत प्रसन्न हो गए। वे बोले कि आपने ठीक ही कहा है कि विवेकी जन अकारण ही अपने आश्रमों से नहीं निकलते। मैं एक महान् उद्देश्य से आपके पास आया हूँ। आपके वचनों तथा उत्साहपूर्ण प्रत्युत्तर को सुनकर मुझे हार्दिक प्रसनन्ता हुई। मुझे खुशी है कि मेरा यहाँ आना सफल हो गया है। विश्वामित्र ने पूछा। ''क्या आप अपने वचन पर दृढ़ रहेंगे या नहीं?'' दशरथ ने तुरन्त उत्तर दिया ''स्वामी! आप शायद दूसरों से ऐसा प्रश्न पूछ सकते हैं? दशरथ अपने प्रण को कभी भी नहीं तोड़ेगा। वह अपने प्राण दे देगा लेकिन वचन से नहीं फिरेगा। राजा के लिए नैतिकता तथा ईमानदारी से महान् और क्या हो सकता है? राजा के विभिन्न दायित्वों के समय केवल यही दोनों साथ देते हैं।

विश्वामित्र ने कहा! ''नहीं, नहीं। मेरे मन में कोई शंका नहीं है। मैंने तो आपके सत्य के प्रति दृढ़तापूर्ण वचन सुनने के लिए ही ऐसा कहा था। मैं जानता हूँ कि इक्ष्वाकु वंश के राजा अपने दिए हुए वचन पर अडिग रहते हैं। मुझे आपसे न तो धन, न वाहन, न गाय, न स्वर्ण, न सेना और न ही सेवक की अपेक्षा है। मुझे केवल आपके पुत्र राम और लक्ष्मण चाहिए। यही मेरी इच्छा है। इस विषय में आप का क्या विचार है?

यह सुनकर राजा दशरथ स्तब्ध रह गए और वे अचेत से हो गये। कुछ समय बाद जब उन्हें थोड़ी चेतना आई तो उन्होंने साहस

बटोर कर किंचित् शब्द कहे। उन्होंने कहा, ''स्वामी! ये दोनों बालक आपके किस काम आयेंगे? आप जिस कार्य के लिए इन दोनों बालकों को ले जाना चाहते हैं क्या आपके विचार में उस कार्य को मैं नहीं कर सकता? मुझे अवसर दीजिए। मुझे अपना जीवन सफल बनाने दीजिए। मुझे बतायें कि वह क्या कार्य है। उसे करने में मुझे आनन्द आयेगा''

राजा दशरथ ने दुःखी हो वसिष्ठ को बुलवाया। वसिष्ठ शीघ्र ही आ गये और विश्वामित्र को देखकर उन्होंने मुस्कराते हुए परस्पर अभिवादन किया। वसिष्ठ ने राजा का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना। निस्संदेह वसिष्ठ उन बालकों की दिव्य वास्वविकता को भली-भाँति जानते थे। अतः उन्होंने राजा को यह परामर्श देने का निश्चय किया कि वे बिल्कुल भी चिंता न करें तथा बालकों को ऋषि के स्नेहपूर्ण संरक्षण में सहर्ष भेज दें। विश्वामित्र उठकर जाने लगे। राजा ने उनके चरण पकड़ लिए और उनसे प्रार्थना करने लगे कि वे उन्हें और थोड़ा समय दें। दशरथ ने विश्वामित्र से कर्त्तव्यबोध की शिक्षा प्रदान करने की विनती की ताकि वे ऋषि के आदेश का पालन कर सकें। वसिष्ठ ने दशरथ को अपने पास बुलाकर उन्हें परामर्श देते हुए कहा—राजन् ! आप अवश्यंभावी दैवी योजना के मार्ग में बाधा बन रहे हैं। हृदय पितृस्नेह से आप्लावित होने के कारण ही आप सत्य को नहीं देख पा रहे हैं। आपके पुत्रों का बाल बांका भी न होगा। उनसे बढ़कर शूरवीर अन्य कोई नहीं है।

इस प्रकार से बहुत समय तक उपदेश देने के बाद वसिष्ठ ने राम और लक्ष्मण को बुलवा भेजा। ज्यों ही बालकों को पता लगा कि ऋषि विश्वामित्र और गुरु वसिष्ठ ने उन्हें बुलाया है वे दोनों तुरन्त ही राजभवन की ओर दौड़े और वहाँ प्रवेश करते ही उन्होंने पहले पिता को साष्टांग प्रणाम किया, फिर गुरु वशिष्ठ को तथा फिर विश्वामित्र को। विश्वामित्र ने श्रद्धा सहित खड़े उन बालकों से ओठों पर मुस्कान सहित पूछा।''बालकों! क्या तुम मेरे साथ चलोगे?'' यह सुनकर

बालक प्रसन्न हो उठे ।

उनके यह वचन सुनकर दशरथ ने सोचा कि अब वसिष्ठ की आज्ञा का पालन करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है । वसिष्ठ ने बालकों को अपने पास बुलाकर उनके सिर पर अपना वरद हस्त रखकर आशीर्वादसूचक मन्त्रोच्चारण किया । बालकों ने गुरुजनों का चरण स्पर्श कर उनसे आशीर्वाद लिया । वे प्रस्थान हेतु तैयार खड़े थे । दशरथ ने देखा कि उनके मुख प्रसन्नता व शक्ति की आभा से चमक रहे थे । उन्होंने अपने भीतर उत्पन्न दुःख को दबाने का प्रयत्न किया । बे बालकों के कंधों पर अपने हाथ रख कर विश्वामित्र के समीप आये और कहने लगे–

हे स्वामी ! आज से ये दोनों आपके ही पुत्र हैं । इनका स्वास्थ्य और प्रसन्ता आप पर निर्भर है । यदि आप इनके साथ कुछ निजी रक्षक भेजने का आदेश दें तो मैं तुरन्त प्रबन्ध करूँ ।

इस पर विश्वामित्र जोर से हँसे । '' हे राजन् ! आप वास्तव में भ्रान्तचित हो गये हैं, जो विघ्नों में यज्ञ की रक्षा करने के लिए जा रहे हैं उनकी रक्षा कौन कर सकता है ? क्या हमें उनके लिए रक्षक की आवश्यकता है ? वे तो उस यज्ञ की रक्षा करने जा रहे हैं जिसकी रक्षा ऋषि-मुनि भी नहीं कर सकते । क्या ऐसे शूरवीरों को भी किसी रक्षक की अपेक्षा है ? आप ऐसी सहायता का प्रबन्ध करने के लिए क्यों सोचते हैं ? वास्तव में आपके मोह ने आपको अंधा बना दिया है ? आपको भी यह अवश्य ज्ञात है । राजन् ! जब मेरा कार्य पूर्ण हो जाएगा तो मैं इन्हें अपने साथ वापिस लाकर आपको ही सौंप दूँगा । चिन्ता मत कीजिए । बिना किसी भय अथवा विघ्न के राज्य कीजिए । विश्वामित्र जी ने राम को कहा–

सृष्टिपालन और विनाश तो दिव्य नियम की अभिव्यक्तियाँ हैं । यह दिव्य संकल्प के अनुसार ही होती है । यह व्यक्ति के वश में नहीं है । तुम्हें पूरा अधिकार और कर्त्तव्य है । जिस प्रकार अग्नि में कोई मैल नहीं रह सकती उसी प्रकार कोई भी पाप दिव्य को मलिन नहीं कर सकता । सृष्टि करने का संकल्प तथा रक्षा करने वाला नियम दण्ड देने

के नियम को भी लागू कर सकता है। इस राक्षसी और उसके पुत्र द्वारा किए गए घोर पापों का दण्ड देने की कदापि उपेक्षा नहीं की जा सकती। तुम्हें इसे अपना भाग्य मानना चाहिए कि ताड़का अन्य अनेक और पाप करे उससे पहले ही आज तुम्हारे हाथों उसका वध होगा। तुम उसके तथा राष्ट्र के हितों की रक्षा करोगे।

यह न तो अनुचित है और न ही पाप है। यदि अब तुम किसी प्रकार की दया भावना रखोगे तो इससे विश्व को महान् क्षति पहुँचेगी। इससे धर्म का ह्रास होगा। इससे ताड़का अधिक से अधिक पाप कर्मों में संलग्न हो जायेगी। मैं इस पहलू की गहराई में न जाकर और तर्क नहीं दूँगा। मैंने अपने आध्यात्मिक नेत्र से सब कुछ देख लिया है।

जब विश्वामित्र ने इन वचनों में पूर्ण सत्य प्रकट किया तो राम ने ऐसा प्रदर्शित किया मानों उन्होंने जो भी सुना उसके प्रति वे अनभिज्ञ थे। उन्होंने कहा, ''विश्व नहीं समझेगा कि ऋषि-मुनियों के वचनों में पवित्र अर्थ निहित होते हैं। मैंने इस कर्म की नैतिकता पर आपसे इसलिए पूछताछ की ताकि संसार के लोगों को मालूम हो कि आप न्याय एवं गुण का स्पष्टीकरण कैसे करते हैं। मेरे पिता ने मुझसे विश्वामित्र ऋषि के आदेश का पालन करने को कहा था। मैंने अपने पिता के आदर्शों का पालन करने का निश्चय किया है। आपने कठोर तप किए हैं। जब आपके समान महर्षि यह घोषित करे कि ताड़का को बिना पाप के मारा जा सकता है तथा यह कर्म न्याय-संगत और नीतिपूर्ण है तो मैं कोई अनुचित कार्य नहीं कर रहा। आप धर्म रक्षण तथा जनकल्याण हेतु मुझे जो भी कर्तव्य सौंपेंगे, मैं उसे पूर्ण करूँगा।''

इस प्रकार कहते हुए उन्होंने धनुष को मध्य भाग से मुट्ठी बाँधकर उसे जोर से पकड़ा और उसकी प्रत्यंचा पर तीव्र टंकार दी जिससे दसों दिशायें गूँज उठी। भय से सम्पूर्ण जंगल थर्रा गया। जंगली पशु भयग्रस्त हो यत्र तत्र भागने लगे। ताड़का भी इसके घोर नाद को सुनकर एक बार तो स्तब्ध रह गई। लेकिन फिर क्रोधाभिभूत

हो, जहाँ से आवाज़ आई थी उसी दिशा की ओर रोषपूर्वक दौड़ी ।

श्रीराम ने देखा कि वह राक्षसी पर्वत के समान उसकी ओर दौड़ी आ रही थी । उन्होंने मुस्कराते हुए लक्ष्मण से कहा, ''अनुज ! इसकी विकरालता को देखो ! क्या कोई सामान्य प्राणी इसके इस भयानक दानवीय स्वरूप को देख सकता है ? इसका तो रूप ही अति भयानक है । भला इसके पराक्रम का तो कहना ही क्या ? यह स्त्री है । जब मैं इसकी हत्या करने का निश्चय करता हूँ तो मेरा मन पूरी तरह सहमत नहीं होता । मेरे विचार में यदि इसके हाथ पैर काट दिये जाऐं तो यह मर जायेगी । इसके नाश के लिए इतना ही पर्याप्त होगा ।''

तुरन्त ही माया और विनाशकला में निपुण ताड़का ने पत्थरों की वर्षा कर दी । राम ने निश्चय कर लिया कि ऐसी राक्षसी को अब पृथ्वी पर जीवित नहीं छोड़ना चाहिए । अब उसे स्त्री मानकर भी नहीं छोड़ा जा सकता । अतः उन्होंने प्रत्यंचा की डोर खींच कर ताड़का को लक्ष्य कर बाण छोड़ा । इस पर वह एक बार फिर राम पर झपटी । राम के बाण-प्रहार से उसकी दोनों भुजायें कट गई थी । वह दुःख और पीड़ा से कराहती हुई भूमि पर गिर पड़ी । लक्ष्मण ने एक-एक करके उसके सारे अंग काट डाले । लेकिन ताड़का भी निज इच्छानुसार एक-के बाद एक रूप बदलती रही । यह तुरन्त एक रूप त्याग कर दूसरा धारण कर लेती थी और पुनर्शक्ति प्राप्त कर उनसे युद्ध करने लगती थी । लगता था जैसे वह मर गई हो लेकिन तुरन्त ही जीवित रूप में आ जाती थी । वह एक ही समय में अनेक रूप धारण कर पहले की भाँति पत्थरों की वर्षा करने लगी । उसने युद्ध में अनेकानेक कुटिल चालों का प्रदर्शन किया ।

यद्यपि राम और लक्ष्मण सतर्क थे फिर भी उनके शरीर पर कुछ घाव हो गये । यह देखकर विश्वामित्र ने सोचा कि अब उस राक्षसी की हत्या में तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहिए । उन्होंने कहा, ''राम ! संकोच मत करो । यह समय इसके नारीत्व को सोचकर इस पर दया करने का नहीं है । इसके अंगों को काटने से कोई लाभ नहीं । राक्षस

जब तक जीवित रहते हैं माया से अनेक रूप धारण कर सकते हैं। अतः इसका वध करने का निश्चय करो। तैयार हो जाओ।'' ''ज्यों-ज्यों संध्या का समय आएगा, इस राक्षसी की गर्जना और क्रोध बढ़ता जायेगा। सूर्यास्त के बाद राक्षसों का सामना करना असम्भव हो जाता है। इसका तो अभी नाश कर देना चाहिए। उठो।'' ऐसा कहते हुए विश्वामित्र ने सुरक्षाप्रद पवित्र मंत्रों का पाठ किया।

जिस दिशा से भी आवाज़ आई उसी दिशा में राम ने बाण निर्देशन शक्ति द्वारा यह जान लिया कि ताड़का किस दिशा में थी और उन्होंने उसी दिशा में शब्दभेदी बाण छोड़ा। बाणों के परिणामस्वरूप वह सब ओर से बंध गई और बिल्कुल भी हिल न सकी? फिर ताड़का ने क्रोध से दांत पीसते हुए अपनी भयंकर जिह्वा निकालकर राम और लक्ष्मण पर झपटने का तथा उन्हें अपने बोझ से कुचल देने का प्रयत्न किया। इस पर राम ने निश्चय किया कि अब यदि थोड़ा सा भी विलम्ब किया तो भयंकर परिणाम होंगे। उन्होंने ताड़का के वक्ष में बाण मारकर उसकी छाती चीर दी। उसके साथ ही वह भूमि पर गिर पड़ी और अपने प्राण त्याग दिए।

विश्वामित्र जी ने राम को दण्डचक्र, चर्मचक्र, कालचक्र, इन्द्र का वज्रास्व, शिव का त्रिशूल, ब्रह्माजी का ब्रह्मशिर अस्त्र, ऐषिकास्त्र तथा एबसे अधिक बलशाली और विनाशकारी–ब्रह्मास्त्र प्रदान किए। वे पलभर के लिए आँखें मूंदकर ध्यानमग्न हो बैठे। फिर यह कहते हुए खड़े हो गए ''इन अस्त्रों का भी मुझे क्या करना है?'' उन्होंने राम को दो शक्तिशाली गदाएँ दी–मोदकी और शिखरी। उन्होंने कहा, ''आश्रम में पहुँचने पर मैं तुम्हें अन्य अस्त्र– आग्नेयास्त्र, कौच अस्त्र, नारायणस्त्र, वायु अस्त्र आदि दूँगा।'' वे बोले, ''बेटा! ये सभी अस्त्र अपने स्वामी के आदेशानुसार चलते हैं तथा इनमें अद्‌भुत शक्ति है।'' ऐसा कहते हुए उन्होंने राम के कान में वे मंत्र बताये जो उन अस्त्रों को क्रियान्वित, प्रेरित तथा लक्ष्य की ओर प्रचण्ड रूप में लक्षित करते थे। फिर उन्होंने अपने सामने ही राम से उन मंत्रों को दोहराने को

कहा । थोड़े ही समय में राम ने उन सभी अस्त्रों में प्रतिष्ठित देवताओं के दर्शन कर उनकी कृतज्ञतापूर्ण श्रद्धांजलि प्राप्त की ।

प्रत्येक देवता ने राम के समक्ष प्रकट होकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया । हर एक ने कहा ''राम ! हम सभी यह प्रण करते हैं कि हम आपके आदेशों का पालन करेंगे ।'' वे सभी फिर अदृश्य हो गये । विश्वामित्र ने उस मनमोहक वाटिका में प्रवेश किया । उन्होंने राम के कंधे पर हाथ रखकर स्नेहपूर्वक कहा ''आज से यह आश्रम तुम्हारा भी उतना ही है जितना आज तक यह मेरा था ।'' इन वचनों के साथ ही ऋषि के नेत्रों से हर्ष के अश्रु फूट पड़े । ज्यों ही उन्होंने सिद्धाश्रम में प्रवेश किया वहाँ के निवासी दौड़कर बाहर आए और दण्डवत् प्रणाम किया ।

पाँच दिन व रात दोनों भाई यज्ञ वेदी और आश्रम पर सतत् पहरा देते रहे । उन्होंने एक क्षण भी आराम नहीं किया । छठा दिन भी आरम्भ हो गया । विश्वामित्र यज्ञ में व्यस्त थे तथा प्रत्येक विधि-विधान को पूर्ण वैदिक ढंग से करने में मगन थे । ऋत्विक मंत्रोच्चारण करने, आहुतियाँ डालने तथा अन्य विधियाँ करने में व्यस्त थे ।

सहसा आकाश से ऐसे वज्रघोष हुआ मानो व्योम ही फट गया हो । यह सुनकर सभी दंग रह गए । कुशा, चमस, समिधा और फूलों के ढेर से सुशोभित यज्ञ वेदी के चारों ओर से अग्नि निकलने लगी । चारों ओर प्रचण्ड अग्नि शिखायें फैल गई । कुछ ही समय में आकाश में भयंकर बादल छा गए और दिन गहन अंधकारपूर्ण रात्रि में बदल गया । यज्ञ स्थल की ओर आती हुई रहस्यात्मक दुर्गन्ध बढ़ती गई । उन अमंगलकारी मेघों से रक्त वर्षा होने लगी और रक्त बूंदों को ग्रहण करने के लिए अग्नि शिखायें मुंह खोले थीं ।

उस क्रूरता एवं घृणापूर्ण मायाजाल में राम व लक्ष्मण दुराचारी राक्षसों को खोज रहे थे । राम ने अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा मारीच व सुबाहु नामक मुख्य राक्षसों का स्थान जान लिया और उन्होंने उस दिशा में मानवास्त्र छोड़ा । वह सीधा मारीच के वक्ष पर जाकर लगा और मारीच शक्तिहीन हो गया । फिर उन्होंने सुबाहु को आग्नेयास्त्र

मारा जो उसके हृदय पर लगा । राम को ज्ञात था कि यदि उन दोनों के शवों को उस पवित्र स्थल पर गिराया जाएगा तो वह आश्रम अशुद्ध हो जायेगा । अतः उनके पापपूर्ण सम्पर्क से दूर रहने के लिए राम के बाण ने उनकी दुष्ट देहों को हज़ारों मील दूर समुद्र में गिरा दिया । सुबाहु तो तीर खाकर वहीं मर गया । मारीच को राम ने ऐसा तीर मारा कि वह बहुत दूर जाकर गिरा ।

एक तपस्वी ने उठकर कहा, ''राक्षसों के वध के साथ सभी कार्य पूर्ण हो गए । अब और क्या करना है? विश्वामित्र की चिरसंचित अभिलाषा पूर्ण हो गई है । इससे बढ़कर हमें अन्य किसी बात की आवश्यकता नहीं है । आप तो हमें शिव-शक्ति स्वरूप दिखाई देते हैं । आप कोई सामान्य मानव नहीं हैं । यह तो हमारा परम सौभाग्य है कि हमें आपके दर्शन करने का अवसर मिला । हम आपके अति आभारी हैं ।

यज्ञ का वर्णन करते समय उन्होंने राजा जनक को प्राप्त अलौकिक शक्तिशाली धनुष के विषय में बताया और कहा कि दोनों राजकुमार उसे अवश्य देखें । इस पर राम के यह पूछने पर कि राजा जनक के पास वह धनुष कैसे आया, विश्वामित्र ने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया, ''सुनो, बहुत समय पूर्व देवरथ नामक मिथिला नरेश ने एक विशाल यज्ञ रचा था जैसा पहले कोई नहीं कर सका था । उस यज्ञ से देवताओं ने प्रसन्न होकर देवरथ को यह दैवी धनुष प्रदान किया । वह शिव का धनुष है ।''

यह दैवी धनुष इतना भारी है कि कोई भी देव, दानव या अन्य वीर उसे उठा नहीं सकता । कई राजाओं ने इसे उठाने का प्रयास किया किन्तु उन्हें अपमान और निराशा ही हाथ लगी । राम! तुम दोनों शूरवीर इस धनुष का परीक्षण करने के योग्य हो । इस आगामी यज्ञ के समय सम्भवतः वह धनुष भी प्रदर्शन हेतु रखा होगा । अतः निस्सन्देह यह अति सुन्दर अवसर है ।'' इस प्रकार विश्वामित्र धनुष की शक्ति के विषय में वर्णन करते रहे । लक्ष्मण ने अपनी दृष्टि ऐसे फेर ली मानो

वे मिथिला जाने का मार्ग खोज रहे हो। तभी राम ने कहा, ''हमें अवश्य यह धनुष देखना चाहिए। कल हम आपके साथ चलेंगे।'' यह सुनकर विश्वामित्र प्रसन्न हो गए।

ऋषि विश्वामित्र राम, लक्ष्मण तथा कुछ अन्य शिष्यों सहित मिथिला की ओर बढ़ रहे थे और उन सभी को दिन-रात अपने पूर्व वृत्तान्त तथा जिन स्थानों और राज्यों से होकर वे जा रहे थे उन पर शासन करने वाले विभिन्न राजवंशों के इतिहास का चित्रवत् वर्णन सुनाकर उन्हें प्रसन्न कर रहे थे। इस प्रकार वे मिथिला नगर के समीप पहुँच गये। काफी देर हो गई थी। अतः राम व लक्ष्मण ने विश्वामित्र को दण्डवत् प्रणाम कर उनकी आज्ञा ली और विश्राम के लिए अपने कक्ष की ओर प्रस्थान किया। ब्रह्मवेला में उठकर प्रातः कालीन नित्यकर्म आदि पूर्ण कर वे अपनी अग्रिम यात्रा के लिए तैयार हो विश्वामित्र के पास आ गए। उन्होंने राजा सुमति के प्रति आभार प्रकट किया और मिथिला की ओर चल दिए। कुछ दूर तक तो राजा सुमति भी उनके साथ गए और फिर ऋषि एवं अन्य सभी से विदा लेकर राजधानी लौट आए। विश्वामित्र अपने अनुयायियों तथा राम व लक्ष्मण सहित आगे बढ़ गए।

सायं तक वे मिथिला के समीप पहुँच गये। ऋषि ने दूर से ही नगर की ओर संकेत करते हुए बताया, ''यही अति उत्तम भवनों वाली विशाल मिथिला नगरी है।'' यह सुनकर दोनों भाई तथा ऋषि के शिष्य प्रसन्नता से उछल पड़े। उन्होंने जल्दी-जल्दी चलना आरम्भ कर दिया। शारीरिक थकान की परवाह न करते हुए वे शीघ्र ही नगर के मुख्य द्वार पर पहुँच गये।

विश्वामित्र ने अपना संध्याकर्म पूर्ण किया और जलाशय के तट पर बैठ गए। उनके साथ उनके शिष्य, राम व लक्ष्मण थे। वे दोनों भाई ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो स्वर्ग से दो नक्षत्र भूमि पर उतरे हो। विश्वामित्र उनसे मिथिला के ऐश्वर्य का वर्णन कर रहे थे। उसी क्षण

एक राजसेवक ने आकर अति विनम्र स्वर में उनसे पूछा, ''मुने ! कृपया नाम बताएं । आप कहाँ से आए हैं ? हम राजदूत हैं । हम केवल राजा के आदेश का पालन कर रहे हैं और अपना कर्तव्य निभा रहे हैं । यदि आप मुझे अपना नाम बतायें तो मैं राजा को आपके आगमन की सूचना दूँ ।''

ज्यों ही उन्होंने राजपथ पर प्रवेश किया, राजा जनक अपने मंत्रियों, सेवकों तथा संबंधियों सहित उनकी अगवानी करने स्वयं आए । जनक ने विश्वामित्र को साष्टांगप्रणाम करते हुए कहा, ''भगवन् ! आज मेरी महानतम् अभिलाषा पूर्ण हो गई । आपके पदार्पण से मिथिला नगरी धन्य हो गई ।'' फिर उन्होंने ऋषि, उनके शिष्यों तथा अनुयायियों का कुशलक्षेम पूछा । सहसा उनकी दृष्टि राम और लक्ष्मण पर पड़ी । उन्हें वह दोनों भाई सूर्य के प्रकाश के समान प्रतीत हुए । कुछ क्षण तो वे अवाक् रह गए । वे अपनी सुधबुध खो बैठे । । बहुत प्रयत्न करने पर उन्होंने चेतना प्राप्त कर विश्वामित्र से पूछा, ''स्वामी ! ये दोनों बालक कौन हैं ? ये मुझे अश्विनी कुमार के समान लग रहे हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानो ये मुझ पर अनुग्रह करने ही देवलोक से भूमि पर अवतरित हुए हैं । इनका देवताओं का सा दिव्य मनोहर रूप है । अथवा, शायद ये सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी पर उतर आए हैं । ये सौन्दर्य की प्रतिमूर्तियां दोनों युवा बालक आपके दल के सदस्य रूप में इतनी दूर से चलकर कैसे आए हैं ? या फिर इन्होंने यहीं आपसे जान-पहचान की है और आपके साथ महल में आए हैं ।''

उनकी दशा देखकर विश्वामित्र ने मुस्करा कर कहा, ''ये दोनों अयोध्या के राजकुमार महाराज दशरथ के पुत्र हैं । इनके नाम हैं – राम व लक्ष्मण । इन बालकों का पराक्रम और शक्ति अति आश्चर्यजनक एवं रहस्यात्मक है । तभी राजा जनक ने कहा, ''स्वामी ! वे माता-पिता कितने धन्य हैं जिन्हें इनके समान दिव्यस्वरूप पुत्र मिले । आह ! मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ कि ये हमारे घर पधारे हैं ।'' उन्होंने राम व लक्ष्मण की ओर मुड़कर कहा, ''प्रिय बालको !

मैंने तुम्हारे ठहरने के लिए जिस स्थान का प्रबन्ध किया है अगर वह रुचिकर न हो या तुम्हारे पद के अनुरूप न हो तो मुझे क्षमा करना। यदि तुम चाहो तो मैं किसी अन्य स्थान पर प्रबन्ध करवाने को तैयार हूँ। तुम्हें जो भी चाहिए वह निस्संकोच कह दो। मैं बहुत प्रसन्न होऊँगा।'' राजा के इन विनम्र वचनों को सुनकर राम ने अति आदरपूर्वक राजा जनक से कहा, ''महाराज! हम तो बालक ही हैं। हमें इस प्रबन्ध में कोई परिवर्तन नहीं चाहिए। हम बहुत प्रसन्न हैं।''

राजा जनक ने कहा कि मैंने यह निश्चय कर लिया कि मैं उसी के साथ सीता का विवाह करूँगा जो अपने पराक्रम से इस धनुष का संधान करेगा। सीता का वरण करने के लिए अनेक राजकुमारों ने इस धनुष को उठाकर संधान करने का प्रयत्न किया लेकिन वे सभी हार गए। उन राजाओं को बहुत दुःख हुआ। उनका कहना है कि मैंने उनका अपमान किया। उन्होंने रुष्ट हो एक साथ मिथिलापुरी को घेर लिया और उस पर आक्रमण कर दिया। पूरे एक वर्ष तक युद्ध चलता रहा। इसके परिणामस्वरूप मेरे युद्ध के सभी साधन क्षीण हो गए और मुझे बहुत दुःख हुआ। फिर मैंने देवताओं का अनुग्रह पाने के लिए तपस्या आरम्भ कर दी। देवता मेरे तप से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने मुझे चतुरंगिनी सेना प्रदान की जिससे इस धनुष को सुरक्षित रूप से रखने में समर्थ हुआ। मैंने अपनी आँख की पुतली के समान इसकी रक्षा की। इसका बल अवर्णनीय है।

''रामचन्द्र! रामचन्द्र! मैं आपकी इच्छा पूर्ण करने में संकोच नहीं करूँगा। यदि आप सहमत हो तो उस धनुष को यज्ञशाला में मंगवा लिया जायेगा। मैं अभी इसे लाने का आदेश देता हूँ। मैं यह भी घोषणा करवा दूँगा कि जो भी इसे उठाकर इसकी प्रत्यंचा को चढ़ाने का साहस करे वह प्रयत्न कर सकता है।'' जनक के इन प्रामाणिक वचनों को सुनकर राम व लक्ष्मण ने परस्पर देखा और चुप रहे क्योंकि वे अपने गुरु के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे जिनके साथ वे इतनी दूर से आये थे। तभी, उन दोनों भाइयों के पराक्रम और बल से

भली-भाँति परिचित विश्वामित्र ने कहा कि जनक के प्रस्ताव को पूरा किया जा सकता है। अतः उन्हें किसी प्रकार का विचार करने की आवश्यकता नहीं है। जनक ने यह भी घोषणा की कि उनका प्रण है कि जो भी उस धनुष को उठाकर उसकी प्रत्यंचा को चढ़ा बाण संधान कर देगा उसी से वे सीता का विवाह करेंगे। विश्वामित्र भी उनकी बात से सहमत थे।

राजा जनक अति श्रद्धापूर्वक धनुष के वाहन के पास गए और जब पंडित इसकी अर्चना के लिए वैदिक पाठ कर रहे थे तो जनक ने उसे कुसुमांजलि अर्पित की। उन्होंने दिव्य धनुष को शीश नवाया और फिर विशिष्ट जनों के पास जाकर उन्होंने घोषणा की, ''ऋषि-मुनियों को मेरा नमस्कार! यहाँ आप सभी लोगों का मैं धन्यवाद करता हूँ। जैसा कि आप जानते ही हैं इसे समस्त देवता, असुर, राक्षस, गन्धर्व, बड़े-बड़े यक्ष, किन्नर महारथी भी नहीं उठा सके हैं। जिन्होंने भी उसे उठाने का प्रयत्न किया उन सभी को असफलता के कारण लज्जापूर्वक लौटना पड़ा। फिर भी, आज पुनः मैंने इसे यज्ञशाला में लाने का निश्चय किया। यहाँ उपस्थित आप लोगों में से कोई भी आगे आकर इस धनुष को खींचने, इस पर बाण संधान करने, इसकी प्रत्यंचा पर टंकार देने तथा इसे उठाकर इधर-उधर हिलाने का प्रयास कर सकता है। धनुष आपके सामने है। इन शब्दों सहित जनक ने हाथ जोड़कर आगन्तुकों के समक्ष मस्तक झुकाया और सिंहासन पर बैठ गए।

उसी समय विश्वामित्र ने मुस्कराते हुए राम को देखा। राम तुरन्त ही उस वाहन के समीप गए और अपने बाँये हाथ से सन्दूक खोला तथा दायें हाथ से बड़ी सरलतापूर्वक धनुष निकाल लिया। जैसे ही धनुष पर प्रत्यंचा खींची धनुष टूट गया। चारों ओर बैठे विस्मयपूर्ण मुखों को देख रहे थे। इसके पश्चात् राजा जनक अपने सिंहासन से उठ गए और विश्वामित्र को दण्डवत् प्रणाम कर बोले, ''भगवन्! राम के समान पराक्रमी पृथ्वी पर अन्य कोई नहीं है। मैं अपने वचन का पालन करूँगा। मैं सीता का विवाह उसी से करूँगा जिसने इस धनुष

को उठाकर इसकी प्रत्यंचा को खींचा ।''

विश्वामित्र ने इसका उत्तर देते हुए कहा ''राजन्! यदि यह समाचार राजा दशरथ को भेज दिया जाए तो उत्तम होगा । फिर उनके आने पर ही यह उत्सव मनाया जाए यही मेरी इच्छा है । राम अपने पिता की आज्ञा के इतने दृढ़ पालक हैं कि वे अपने पिता की आज्ञा के बिना विवाह को तैयार न होंगे ।''

जब राजा दशरथ को इस शुभ समाचार का पता चला वे अपने अंगरक्षक, राजगुरु वसिष्ठ, मुख्य पुरोहित, अन्य ब्राह्मण व पंडित अपने-अपने रथों में बैठ कर मिथिला को चल पड़े । ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों सम्पूर्ण अयोध्या नगरी ही विवाह देखने के लिए मिथिला जा रही हो । मिथिला जाने के लिए उत्सुक सभी व्यक्तियों को साथ ले जाया गया । दो रात व दो दिन यात्रा करने के बाद तीसरे दिन वे लोग मिथिला पहुँचे । महाराज जनक ने नगर के मुख्य द्वार पर उनका स्वागत किया । उन्होंने मन्त्रियों, ऋषियों और पुरोहितों का उनके पद के अनुसार स्वागत किया । महाराज ने उन सभी के ठहरने का प्रबन्ध करवाया ।

उसी क्षण राम और लक्ष्मण विश्वामित्र मुनि के साथ वहाँ पहुँच गये । उन्होंने अपने पिता को और गुरुओं वसिष्ठ, वामदेव आदि को दण्डवत् प्रणाम किया । अपने दोनों पुत्रों को इतने दिन बाद देखकर उन्हें अपार हर्ष हुआ । उन्होंने उन्हें पास बुलाकर उनकी पीठ थपथपाई और वक्ष से लगा लिया । कुछ समय से बिछड़े पुत्रों को दुलारते हुए पिता के महान् आनन्द को देखकर ब्राह्मण और मन्त्रिगण उनकी सराहना करते हुए आत्मविस्मृत हो गए ।

महाराज जनक ने कहा कि मैंने कुशध्वज को आज यहाँ इसलिए बुलाया है ताकि ये इस विवाह उत्सव में आनन्द के भागी बन सकें । ब्रह्मर्षि! आपने आदेश दिया कि राम का विवाह सीता से और लक्ष्मण का विवाह मेरी दूसरी बेटी उर्मिला से हो । मैं आपके आदेश को

परम हर्ष सहित स्वीकार करता हूँ। पराक्रम ही जिसको पाने का शुल्क था उस देव कन्या सीता को श्रीराम के लिए तथा दूसरी पुत्री उर्मिला को लक्ष्मण के लिए विनम्रता तथा प्रसन्नतापूर्वक समर्पित करता हूँ।

मैं एक अन्य प्रस्ताव आपकी अनुमति हेतु प्रस्तुत करता हूँ। महाराज दशरथ! आपके रत्नसम चारों पुत्र परमात्मा की दिव्य भेंट से उत्पन्न हैं। फिर शेष दो अविवाहित क्यों रह जायें? यदि उन दोनों का भी विवाह हो जाए तो हमें महान् प्रसन्न्ता होगी आज मघा नक्षत्र है। वैवाहिक कार्य के लिए यह दिन शुभ है। आज से तीसरे दिन उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र में मैं अपने भाई की भी दोनों बेटियों, माण्डवी और श्रुतकीर्ति से भरत और शत्रुघ्न का विवाह करने के लिए आपकी स्वीकृति चाहता हूँ। इस पर वहाँ एकत्रित विशाल जनसागर ने उनके प्रस्ताव पर 'शुभम्' कहकर उसका अनुमोदन किया। उनकी हर्षध्वनि से आकाश गूँज उठा।

राजा जनक ऋषिगणों सहित उस विशेष मंच पर गए जहाँ विवाह सम्पन्न होना था। वहाँ जाकर उन्होंने प्राथमिक विधि-विधान किए और फिर दूल्हों, उनके माता-पिताओं तथा संबंधियों के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ने प्रातः स्नान किया और पीले रंग के रेशमी वस्त्र पहिने। उन्होंने सिर पर रेशमी पगड़ी बांधी। रत्न तथा नील मणियों से विजड़ित आभूषण पहिने। वे स्वर्ग से आये देवताओं के समान मनमोहक लग रहे थे। विजय नामक शुभ मुहूर्त निकट आ रहा था। वह बाजों के साथ मंच की ओर बढ़े। बाजों व नगाड़ों के उच्च स्वर से स्वर्ग भी गूंज उठा। उनके पीछे-पीछे दरबारी, मंत्री, जागीरदार तथा सेवक बड़े-बड़े थालों में रेशमी वस्त्र, स्वर्ण मुद्रायें तथा अन्य शुभ वस्तुएं लेकर चले।

जनक और उसके भाई कुशध्वज अपनी-अपनी कन्याओं को मंच के पास लाए। उन्हें संस्कारात्मक स्नान करवा कर अति सुन्दर दुल्हिनों के रूप में सजाया गया था। वे अपने पिताओं के पीछे-पीछे दासियों सहित आईं। वसिष्ठ ने जनक को आगे बुलाया। राजा जनक

अपनी पूर्ण वेश-भूषा और अलंकारों से युक्त राजकीय शोभा सहित यज्ञशाला में आए ।

ऋषि वसिष्ठ के आदेशानुसार उन्होंने सीता का हाथ राम के हाथों में रख दिया । उनके नेत्रों में अश्रुधार फूट पड़ी । उस समय जनक ने राम से कहा, ''राम ! यह मेरी पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्मिणी के रूप में उपस्थित है । इसे स्वीकार करो और इसका पाणिग्रहण करो । यह समृद्धि, शान्ति और सुख लायेगी । यह महान् गुणशाली और सत्यशीला है । यह तुम्हारी छाया की भाँति तुम्हारे साथ रहेगी ।''

फिर वे लक्ष्मण के पास जाकर बोले, ''लक्ष्मण ! मैं उर्मिला को तुम्हारी सेवा में दे रहा हूँ । इसे स्वीकार करो ।'' वैदिक मंत्रों सहित उन्होंने लक्ष्मण को उर्मिला का हाथ पकड़ा दिया । इसी प्रकार उन्होंने भरत के पास जाकर विवाह हेतु वेदमंत्र पाठ की परम्परानुसार माण्डवी को उसकी पत्नी रूप में दान में दिया । इसी भाँति पवित्र जल एवं वैदिक मंत्रोच्चारण सहित भरत ने माण्डवी और शत्रुघ्न ने श्रुतकीर्ति का पाणिग्रहण किया । तदुपरान्त वेद-पाठ में निपुण विद्वानों ने नव-दम्पतियों पर सुरगणों के आशीर्वाद हेतु वेदोक्त विधि अनुसार विवाह संस्कार सम्पूर्ण किया ।

जनक ने मण्डप के बीच में खड़े होकर राजकुमारों से इस प्रकार कहा, ''प्रिय राजकुमारो ! हमारी बेटियों को तुम गृहस्वामिनियों के रूप में प्रतिष्ठित करना ।'' राजा जनक के ये वचन सुनते ही चारों भाइयों ने गुरु वसिष्ठ के आशीर्वाद और सम्मति से अपनी-अपनी वधुओं का हाथ पकड़कर अग्नि, वेदी, राजा जनक और गुरु वसिष्ठ की परिक्रमा की तथा उन्हें प्रणाम किया ।

राजा दशरथ अपने पुत्रों तथा पुत्र-वधुओं सहित अयोध्या की ओर बढ़ रहे थे । सहसा उन्होंने मार्ग से कुछ अपशकुन देखे जिन्हें देखकर उन्हें ज्ञात हो गया कि कुछ भयानक घटना होने वाली है । दशरथ ने वसिष्ठ जी के पास जाकर उनकी सलाह ली, ''मुनिवर ! कैसी विचित्र बात है । बादल घने होकर गरज रहे है । जंगली पशु हमारी परिक्रमा कर रहे हैं । इन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए । इसका क्या

कारण हो सकता है? इसका क्या अभिप्राय है? इन अपशकुनों से मुझे शंका होने लगी है। वसिष्ठ ने उन लक्षणों को अपनी दिव्य अन्तर्दृष्टि द्वारा देखा और बोले, ''हे राजन्! यह तो हम पर आने वाली किसी भारी विपत्ति के लक्षण हैं। मेघ अति भयानक रूप से गरज रहे हैं। जंगली पशुओं द्वारा हमारे रथों की परिक्रमा से यह स्पष्ट है कि संकट टल जाएगा। इसलिए आप चिन्ता छोड़िए। वसिष्ठ ने दशरथ के मन में विश्वास और श्रद्धा दिलायी और वे आगामी घटना की प्रतीक्षा करने लगे।

परशुराम को नजदीक आते देख वसिष्ठ ने परम्परागत स्वागत-सत्कार चरण प्रक्षालन आदि से उनकी अगवानी की। यद्यपि उन्होंने वसिष्ठ का सत्कार स्वीकार कर लिया लेकिन वे राम को अग्निपूरित नेत्रों से टकटकी लगाकर देख रहे थे। राम उनकी ओर देखकर मंद-मंद मुस्करा रहे थे जिससे परशुराम का क्रोध और भी तीव्र हो गया। परशुराम ने गरजते हुए कहा, हे दशरथनंदन! मैंने हज़ारों जिह्वाओं से तुम्हारे अद्‌भुत पराक्रम की प्रशंसा सुनी है। मैंने यह भी सुन लिया है कि तुमने शिव धनुष को बाल क्रीडा के समान तोड़ डाला। लेकिन यह सब मैंने केवल सुना ही है, देखा नहीं है। अब मैं तुम्हारे पराक्रम को साक्षात् देखने के लिए स्वयं आया हूँ। मैं अपने पूज्य पिता जमदग्नि का दिव्य धनुष लेकर आया हूँ। तुम इस पर बाण संधान करो और अपना बल दिखलाओ। अन्यथा मुझसे युद्ध करो।

इस कोप प्रदर्शन से राम बिल्कुल भी प्रभावित नहीं हुए। वे शांतभाव से मुस्कराते रहे। उन्होंने कहा, ''हे भार्गव! मैं समझता था कि क्षत्रियों से बदला लेने की तुम्हारी भावना समाप्त हो चुकी है। यह दुबारा कैसे उत्पन्न हो गई? यह पतन क्यों?'' तभी दशरथ ने दीनभाव से हाथ जोड़कर कहा, आप ब्राह्मण हैं। आपने महान् ख्याति पाई है। मेरे बेटे अभी तरुण है। फिर अकारण ही आप उनके प्रति हिंसात्मक घृणा क्यों कर रहे हैं?

परशुराम ने दशरथ की बातों पर ध्यान नहीं दिया और न ही उन्हें सुना। वे तो केवल राम को ही देख रहे थे। उन्होंने कहा, ''जो

धनुष तुमने तोड़ा है और यह धनुष, दोनों ही स्वर्ग से आए थे। विश्वकर्मा ने स्वयं इन्हें बनाया था। एक तो त्रिपुरासुर से युद्ध करने के लिए शिव को दिया गया था और दूसरा विष्णु को दिया गया। राक्षसों का नाश करने के बाद शिव ने यह धनुष युद्ध के लिए प्रयुक्त बाणों सहित राजा देवरथ को दे दिया था। सम्भवतः जिस उद्देश्य से यह धनुष शिव को दिया गया था वह कार्य पूर्ण हो जाने के कारण धनुष दुर्बल और शिथिल हो गया हो। ऐसे धनुष को खण्डित करना वीरता या पराक्रम का प्रमाण नहीं है।

परशुराम की चुनौती सुनकर लक्ष्मण क्रोध से भभक उठे थे। वे उपयुक्त उत्तर देने के लिए बीच में बोलने ही वाले थे कि राम ने उन्हें शांत करते हुए कहा, ''तुम्हारा इस बात से कोई संबंध नहीं है। क्योंकि जो प्रश्न मुझसे पूछे गए हैं, मुझे स्वयं उनका उत्तर देना है। हम दोनों के बीच में बोलना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। इस स्थिति से मुझे अकेले निपटने दो।'' राम के स्नेहपूर्ण तथा मृदु उपदेश को सुनकर लक्ष्मण चुप हो गये। लेकिन राम द्वारा चुनौती को तत्काल स्वीकार न करने पर जब परशुराम ने हँसना और उनका उपहास करना आरम्भ किया तो लक्ष्मण अपने आक्रोश को वश में न कर सके।

वे चिल्लाये,''हे भार्गव! जिसने शिव का धनुष तोड़ डाला उनके लिए यह कोई कठिन कार्य नहीं है इस नन्हें धनुष को तोड़ने के लिए आप केवल राम को ही क्यों चुनौती दे रहे हैं? राम गम्भीर शांत मुद्रा में बोले, ''हे भार्गव! आप ब्राह्मण हैं। वर्ण की दृष्टि से क्षत्रिय के लिए आप पूज्य हैं। आदरणीय विश्वामित्र आपके संबंधी हैं। मैं ऐसे कुलीन ब्राह्मण का वध करना उचित नहीं समझता। न ही इस पवित्र अस्त्र को मैं आप पर उठाना चाहता हूँ।

इसी मध्य परशुराम मुस्करा उठे। उन्होंने कहा, ''राम! जो कुछ घटित हुआ क्या तुमने उसे देखा? मैंने दिव्य प्रकाट्य तथा दैवी कान्ति की आनन्दानुभूति की है। अतीत काल में मैंने यह भौतिक क्षेत्र कश्यप को उपहार स्वरूप दिया था। कश्यप ऋषि ने आदेश दिया था कि मैं उनके अधिकार क्षेत्र में कभी प्रवेश न करूँ और अगर करूँ भी तो एक

रात भी सोकर न बिताऊँ। इस प्रकार का अभिशाप उन्होंने मुझे दिया था। अब रात्रि हो चली है। मैं और अधिक अब यहाँ नहीं ठहर सकता। मुझे शीघ्र महेन्द्राचल को लौटना है। मेरी अतुलनीय तपश्चर्या के बल पर मैंने उच्चतर लोकों पर विजय पाई है। धनुष को तोड़ दो और साथ ही मेरे द्वारा अर्जित सारी शक्ति को भंग कर दो। मुझमें जो शक्ति है वह तुम्हारी ही है। हे राम! देखो मुझे प्राप्त सभी शक्तियाँ मैं तुम्हें लौटा रहा हूँ। यह कहते हुए परशुराम अदृश्य हो गये।

सैनिक आनन्द से जयनाद कर उठे तथा उन्होंने आगे चलना प्रारम्भ किया। विपत्ति की आशंका समाप्त हो चुकी थी। दशरथ ने शेष यात्रा दिन भर की विस्मयकारी घटनाओं का वर्णन करके या उनके वर्णन का आनन्द उठाकर व्यतीत की। जैसे ही वे नगर के निकट आये सेना की कुछ टुकड़ियों को नगरवासियों को बारात की वापसी की सूचना देने के लिए भेजा गया। मिथिला की शोभा, महिमा तथा मार्ग के अनुभव की स्मृति ने उनके पैरों को तीव्र गति प्रदान कर दी थी तथा वे तीर के समान नगर की ओर बढ़ रहे थे।

दशरथ ने पुत्रों तथा पुत्र-वधुओं के साथ राजधानी अयोध्या में प्रवेश किया। सम्पूर्ण वातावरण संगीत की ध्वनि से गूंज उठा। जय-जयकार करते-करते लोगों के गले बैठ गये। स्त्रियों ने आरती उतारी, पथ पर पुष्प वर्षा की तथा गुलाबजल छिड़का। नक्षत्र रूपी बंधुओं के मध्य राजकुमार सूर्य समान उज्ज्वल प्रकाश मान थे। जब जन-समुदाय ने यह अद्‌भुत दृश्य देखा तो कई भूल गये कि वे कहाँ खड़े हैं। उनके आनन्द की सीमा न रही। उनकी आँखें देखे नहीं अघातीं थीं। अतः उन्हें देखते रहते के हेतु वे काफी दूर तक वापस चले आये। इस प्रकार उनका सारा रास्ता तय हुआ तथा वे राजमहल के द्वार पर पहुँच गये। वहाँ वैदिक मंत्रों का पाठ करके नव विवाहितों के सौभाग्य एवं समृद्धि की प्रार्थना करने के लिए ब्राह्मण ठहरे हुए थे।

तब तक राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न भी वहाँ पहुँच गये थे

तथा अपने-अपने आसन ग्रहण कर लिये थे। उन्होंने राजसी वस्त्र, बहुमूल्य आभूषण तथा मुकुट धारण किये हुए थे। माताओं तथा आमंत्रित स्त्रियों ने इस दृश्य से अपने नयन तृप्त किए। उनका आनन्द असीम था। उसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता।

(2) अयोध्याकाण्ड

एक दिन महाराज दशरथ के मन में विचार आया कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। इसलिए राम को राजगद्दी देकर मैं तपस्या करूँ। इस पर उन्होंने मंत्रियों से परामर्श किया तो सबने बड़ी प्रसन्नता से राम का राजा होना चाहा। इस बात को जो सुनता था वह बहुत प्रसन्न होता था। सारी अयोध्या में बाजे बजने लगे, घर-घर आनन्द मंगल होने लगा, सब लोग अपने-अपने घर और दुकानों को सजाने लगे। जब राजमहलों में यह समाचार पहुँचा तब सब रानियाँ बड़ी प्रसन्न हुई। परन्तु कैकेयी की दासी मन्थरा ने जब राम के राजा होने का समाचार सुना तब उसको बड़ा दुःख हुआ। यह समाचार सुनते ही उसका मुँह फीका पड़ गया और झटपट दौड़ती हुई कैकेयी के पास गई और कहने लगी कि देख तुझे कुछ पता भी है? तू तो अपने रूप के घमण्ड में बैठी है, परन्तु अब तुझ पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा है। अब तेरा सब आदर चल बसा। अब तेरे हिस्से में ग़रीबी आ गई।

राजा तेरे सौतेले बेटे राम को राजा बनाने लगे हैं और तुझसे सलाह तक नहीं ली। इसीलिए भरत को पहले से ही उसके मामा के यहाँ भेज दिया। अब मालूम पड़ा कि राजा तुझसे बनावटी प्यार करते हैं। जो तू अपना और अपने पुत्र का भला चाहती है तो जल्दी कर। अब एक ही रात शेष है। कल तो श्रीराम का राजतिलक हो ही जाएगा। राजतिलक हो जाने पर फिर पछताने के और कुछ हाथ न लगेगा। श्रीराम का राजतिलक हो जाने के पश्चात् तू दूध की मक्खी

के समान हो जायेगी और सुत सहित यदि उसने सेवा न की तो घर में न रह पायेगी । भरत और उसे बंदी बना लिया जाएगा । देख, राजा पर तेरे दो वरदान जमा हैं । उनको अब माँग ले । पहले वर में भरत को राजसिंहासन और दूसरे में राम को 14 वर्ष का वनवास ।

मन्थरा की ऐसी प्यार की बातें सुन कर कैकेयी ने मन्थरा की खूब बढ़ाई की और तुरन्त अपने गहने कपड़े फेंक, मैला वेष बना कोप भवन में चली गई । जब रात को राजा दशरथ महलों में आये तब रानी कैकेयी को अपने स्थान पर न पाया, देखें तो वह अलग एक कोने में मैले कपड़े पहने हुए भूमि पर लौट रही है । राजा ने उससे पूछा कि क्या बात है? आज तो बड़ी खुशी का दिन है । आज तुम यहाँ मन मैला किये क्यों पड़ी हो? कहो तो? जो तुम कहोगी वही होगा । राजा के बहुत देर तक समझाने बुझाने पर रानी कैकेयी ने कहा कि आप सत्यवादी हैं, कभी झूठ नहीं बोलते और आप हमको दो वर भी दे चुके हैं । पिछली बात विचारिए, उन्हें याद कीजिए और वे बातें आज पूरी कीजिए । मैं कोई नया वर तो माँगती ही नहीं । दशरथ ने कैकेयी से कहा–

मैं तुम्हें निश्चय ही दो वर दूँगा । कैकेयी! और देर क्यों करती हो? माँगो ।

कैकेयी झिझकी फिर बोली–

कल राम को युवराज पद देने का प्रबन्ध हो चुका है । उसकी जगह मेरे पुत्र भरत को युवराज पद दिया जाए । यह मेरा पहला वर है । राम जटाजूट, मृगछाला तथा बल्कलवस्त्र धारण कर 14 वर्ष तक वन में वनवासी बनकर रहे, यह मेरा दूसरा वर है । भरत जब युवराज बनें तो मार्ग निर्बाध हो, इसलिये राम मेरे सामने ही वन में चले जायें । मुझे ये दोनों वर दे दीजिए और सत्य प्रतिज्ञ होने के अपने सम्मान को

बनाये रखिये। अन्यथा इसी क्षण कैकेयी को प्राण-त्यागने की आज्ञा दीजिए। अतः महाराज या तो वर देकर शिवि, दधीचि और बलि की श्रेणी में बैठ जायें या अपयश के भागी बन जायें। दशरथ ने कैकेयी से फटकारते हुए कहा जैसे सत्य सांई बाबा लिखते हैं–

रे पिशाचिनी! मैं तुम्हारे मायाजाल में फँस गया और धोखा खा गया। ऐसा लगता है कि मैंने सोने के खड्ग से मंत्रमुग्ध होकर अपना ही गला कटवा लिया। मैं दुग्ध से भरा पात्र पी गया। मुझे ज्ञात न था कि उसमें विष मिश्रित है।

–रामकथा रस वाहिनी पृ० 207-208

यह सुनते ही राजा थरथराने लगे। शोक से आँखों के सामने अँधेरा हो आया। मूर्च्छा खाकर वे बेहोश हो गिर पड़े।

दशरथ ने कैकेयी का क्रुद्ध, दुर्वचन कहते भयानक रूप देखा। वे अपने भीतर उठने वाली क्रोधाग्नि को न तो निकला सकते थे और न ही दबा सकते थे। उनकी स्थिति महाराज बलि के समान थी जिसने वामन भगवान् को तीन पग भूमि दान करने का वचन दिया था परन्तु बाद में उसे पता चला कि वह अपना वचन पूरा नहीं कर सकता था क्योंकि भगवान् ने एक पग में सारी पृथ्वी और दूसरे में सारा आकाश नाप लिया था और तीसरे पग के लिए भूमि की मांग करते हुए खड़े थे। दशरथ को धर्मभंग से होने वाले पाप का भय हुआ। उनके नेत्र शंका तथा निराशा से धुंधला गये। उनको अपना सिर कंधों पर बहुत भारी लगा। वह जहाँ खड़े थे वहीं भूमि पर गिर पड़े। अंत में कुछ साहस करते हुए वह चिल्लाए–

हे पापिन्! आज यदि राम का राज्याभिषेक टला तो मेरी मृत्यु अवश्यंभावी है। उसके बाद तुम विधवा होकर जैसे चाहो इस राज्य का शासन करना।

बहुत देर पीछे जब मूर्च्छा जागी तब कैकेयी को समझाने लगे। यहाँ तक कि सारी रात समझाने ही में बीत गई। परन्तु रानी टस से मस न हुई। अन्त में जब रानी समझने से नहीं समझी तब धर्म की

फाँसी में जकड़े हुए राजा ने उसके वर पूरे किये और जी कड़ा करके कह दिया कि तू नहीं मानती है तो जो तेरी इच्छा में आवे सो ही कर। बात यह थी राजा सत्यवादी थे। वे अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणप्यारे पुत्र को वन भेजने के लिए विवश हो गये। राजा इतना कहते ही फिर बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़े। इतने में रात बीत गई और दिन निकल आया।

आज सारी नगरी में चारों ओर खुशी ही खुशी मनाई जा रही है। राम भी तड़के उठ कर स्नान करके रेशमी वस्त्र पहन कर राजतिलक के लिए तैयार हैं, उधर सीता भी मगन हो रही है कि आज हम महारानी बनेगी। देश में कीर्ति पावेगी। माता कौशल्या भी फूली नहीं समाती और परमेश्वर को धन्यवाद दे रही है कि आपकी कृपा से आज हमारे पुत्र का राजतिलक होगा। लक्ष्मण भी फूले नहीं समाते। मन में मगन हैं कि बड़े भाई की सेवा कर सुख से दिन बितायेंगे। परन्तु यह कोई नहीं जानता कि दिन निकलते ही सुख के बदले दुःख का सामना होगा। राजतिलक के स्थान पर भूमि पर सोना होगा। रेशमी वस्त्रों के बदले पेड़ों की छाल पहनने को मिलेगी।

दिन चढ़ा देखकर सुमन्त राजा को बुलाने के लिए राज-महलों में आये। वहाँ राजा को अचेत पड़े देख कर आश्चर्य में डूब गये। रानी कैकेयी ने सुमन्त से कहा कि ऐ सुमन्त! आज श्रीराम के राजतिलक के आनन्द में राजा रात भर जागते रहे हैं। इस कारण अब ऊँघ रहे हैं। तुम श्रीराम को यहाँ शीघ्र बुला लाओ। इतना सुन सुमन्त तुरन्त ही श्रीराम को बुला लाये। श्रीराम ने पिता जी को दुःखित व बेहोश पड़े देखकर रानी कैकेयी से पूछा कि माता मैंने तो अपनी जान में कोई अपराध नहीं किया और जो भूल-चूक भी कोई हो गई हो तो आप उसे क्षमा कीजिए। क्या कारण है कि पिता जी आज बोलते भी नहीं। हमसे पिता जी का दुःख देखा नहीं जाता। यह सुनकर कैकेयी ने कहा कि ऐ राम! राजा को कुछ इच्छा नहीं। न राजा किसी पर क्रुद्ध हैं। आपके राजा के मन में एक बात आई है, डर से कुछ कह नहीं सकते।

क्योंकि तुम उनको अत्यंत प्रिय हो। राजा ने मुझे दो वचन दिये थे—परन्तु तुम्हारे डर से पूरे नहीं करते। ऐ राम! धर्मात्मा व्यक्ति को अपना वचन अवश्य पूरा करना चाहिए। जो तुम राजा का वचन पूरा कर दो तो मैं तुमको उनकी आज्ञा कह सुनाऊँ।

इतनी बात सुनते ही श्रीराम कुछ लज्जित होकर बोले कि माता! ऐसे संकोच से आप क्या कहती हैं? मैं राजा की आज्ञा से आग में कूदने को तैयार हूँ। मैं तो विष भी पी सकता हूँ और सागर में डूबने को भी तैयार हूँ। चाहे जो हो, राजा जी मुझसे बेधड़क होकर आज्ञा करें मैं अवश्य पिताजी की आज्ञा का पालन करूँगा। कैकेयी ने कहा कि मैंने राजा से दो वर माँगे हैं। एक में भरत को राजगद्दी और दूसरे में तुमको 14 वर्ष का वनवास। तुम्हारे प्रेम से राजा साफ़-साफ़ नहीं कहना चाहते और न तुमको देख सकते हैं। ऐ राम! अब तुमको चाहिए कि तुम राजा की आज्ञा का अवश्य पालन करो।

इतना सुनते ही श्रीराम ने बड़ी प्रसन्नता से कहा कि बहुत अच्छा भरत राजा हो। मैं अभी चीर-वल्कल पहन कर वन को जाता हूँ। परन्तु मुझे संदेह है कि जब पिता जी मेरे स्वभाव को जानते थे, मेरी आदतों को पहचानते थे, तब मुझसे तुरन्त ही क्यों नहीं कह दिया? तुमने इतना बखेड़ा क्यों किया? ऐ माता! मैं अवश्य पिता की आज्ञा का पालन करूँगा। यह मैं खूब जानता हूँ कि माता-पिता की आज्ञा के पालन से बढ़कर पुत्र का दूसरा कोई धर्म नहीं है।

धन्य हैं ऐसे वीर धर्मात्मा जिसको राजगद्दी का समाचार सुनकर न तो कुछ सुख हुआ और न वनवास की आज्ञा पाकर कुछ दुःख हुआ। अब श्रीराम अपनी माता से आज्ञा माँगने के लिए अपने महल में आये और कहने लगे हे माता! अब मैं रेशमी आसन पर न बैठूँगा। अब तो मुझे वन ही रेशमी आसन से बढ़ कर होगा। पिता जी ने राज तो भरत को दिया है और मेरे लिए 14 वर्ष तक वन में रहने की आज्ञा दी है।

अपने प्यारे पुत्र को राज के बदले वन जाते सुन, कौशल्या को

कितना दुःख हुआ होगा यह अवर्णनीय है। परन्तु जब यह समाचार लक्ष्मण के कानों में पहुँचा तब उन्हें राजा के ऐसे विचार पर बड़ा क्रोध आया। वे कौशल्या से आकर कहने लगे हे माता! कैकेयी के कहने से श्रीराम का वन जाना हमें उचित मालूम नहीं होता, जो कहो कि यह तो राजा की आज्ञा है, तो ऐसे राजा का भी क्या ठिकाना, उनकी तो बुढ़ापे में बुद्धि मारी गई है। जो उनको विचार होता तो क्या वे स्त्री के वश में होकर, निर्दोष श्रीराम को वनवास की आज्ञा देते। जो कहो कि श्रीराम में कोई दोष होगा तो यह कभी हो ही नहीं सकता। सामने तो क्या, पीछे भी कोई वैरी से वैरी भी श्रीराम में कुछ दोष नहीं लगा सकता। भला कोई धर्मात्मा पिता देव समान सीधे स्वभाव वाले विद्वान् और सबसे प्रिय पुत्र को वन में भेज सकता है? इससे प्रतीत होता है कि राजा की बुद्धि ठिकाने नहीं रही।

लक्ष्मण ने कहा कि ऐ भ्राता राम! जब तक किसी को मालूम न हो आप हमारे साथ राज को अपने वश में कर लीजिए और जो यह संदेह हो कि अब राज कैसे मिलेगा तो इसके लिए मैं तो आपकी रक्षा में धनुष लिये मौजूद ही हूँ। फिर आपको रोकने वाला कौन है? एक दो व्यक्ति की गिनती ही क्या जो सारी अयोध्या भी झगड़ा करेगी तो हम आज सबको मार डालेंगे। भरत के मामा नाना भी जो वैर करेंगे तो मैं आज उनको भी जीवित नहीं छोड़ूँगा। आप शान्ति छोड़िये। राज काज में शान्ति का क्या काम? यह शान्ति तो तपस्वी ब्राह्मणों के लिए है। आप तो क्षत्रिय हैं। राजा ने किस बल-वीर्य पर कैकेयी के पुत्र भरत को राज देना चाहा है? पहले तो आप पटरानी के पुत्र, दूसरे सब में बड़े, राज तो धर्म से आपका ही है। फिर दूसरे की चीज को देने वाले पिता कौन हैं? अब किसी का सामर्थ्य नहीं कि वह हमारे सामने आपका राज भरत को दे दे।

ऐ माता! हम सच कहते हैं कि हमें भाई श्रीराम प्राण से भी प्यारे हैं। मैं तुमसे सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि जो श्रीराम वन में जायेंगे तो मैं भी उनके साथ ही जाऊँगा। फिर मेरा यहाँ क्या काम। देखो! मैं

अभी तुम्हारा सब दुःख दूर करूँगा और राजतिलक श्रीराम को ही दिला कर राजा को अपनी करनी का फल चखाऊँगा ।

लक्ष्मण के ऐसे क्रोध के भरे और वीर-रस से भरे हुए वचन सुनकर श्रीराम कहने लगे । हे भाई ! तुम्हारा विचार ठीक नहीं । यह तो मैं अच्छी प्रकार से जानता हूँ कि तुम्हारा मुझसे प्रेम है और तुममें बल-पौरुष भी बहुत है । जो तुम कहते हो, सो कर भी सकते हो । परन्तु तुम धर्म अधर्म को जानते हुए भी जो कहते हो सो ठीक नहीं । धर्म को जिसमें पिता की आज्ञा का पालन भी है, कभी नहीं छोड़ना चाहिए । मुझमें ऐसा सामर्थ्य नहीं कि पिता के वचनों को भंग करूँ । तुम ऐसा विचार मत करो और फिर माता से कहने लगे कि हे माता ! अब आप मुझे वन जाने की आज्ञा दीजिए ।

माता कौशल्या तो चुप रही, परन्तु लक्ष्मण को फिर क्रोध आ गया और बोले हे भाई ! आपने जो पिता की इस आज्ञा का भंग करना पाप समझा वह उचित नहीं है क्या आपने अभी तक नहीं जाना कि अपने स्वार्थ के लिए आपको बिना अपराध वनवास दिया जा रहा है ? क्या यह कोई धर्म की बात है ? मैं ऐसे अन्याय की बात नहीं मानता हूँ । क्षमा कीजिए, आप पिता के वचनों से राज करने को तैयार थे और अब वन जाने को तैयार हैं और इसी को धर्म मानते हैं । ऐसे धर्म को मैं तो दूर से ही प्रणाम करता हूँ । यह तो धोखा है, धर्म नहीं ।

आप इसे भी धर्म ही कहते हो । आपके अतिरिक्त और कोई भी इसे धर्म नहीं कह सकता और जो आप कहें कि ये भाग्य के वचन हैं, टल ही नहीं सकते, तो मुझको ऐसे भाग्य पर भी भरोसा नहीं । क्योंकि कायर पुरुष ही भाग्य पर भरोसा करते हैं शूरवीर नहीं । जो शूरवीर अपने पुरुषार्थ से दैव के बल को दबाता रहता है, भाग्य उसका कुछ भी नहीं कर सकता और जो आप यह कहे कि ''विधि का लेखा को मेटनहारा'' तो मैं आपको आज दैव और पौरुष का बल दिखला दूँगा । तब आपको मालूम होगा कि भाग्य बलवान् है या पुरुषार्थ । जैसे मस्त हाथी अंकुश के लगने से झुक जाता है वैसे ही आज मैं अपने

बल पुरुषार्थ से दैव को झुका दूँगा। हम दशरथ और कैकेयी की सब आशाएँ मेट देंगे। हे भाई! बुढ़ापे में तो राजा वन को जाया करते हैं न कि जवानी में। अभी तो आपको बहुत दिन राज करना है। बुढ़ापे में जब आप वन को जाएंगे तब आपके पीछे आपका पुत्र राजा होगा न कि भरत या भरत का पुत्र।

आप बेखटके राज कीजिये। मैं आपकी रक्षा करूँगा। जो मैं ऐसा न करूँ तो आप मुझे वीर न समझें। देखो! मेरी भी यह बाँहें गहना नहीं है, लड़ने को हैं। यह धनुष केवल शृंगार ही नहीं है, शत्रुओं को झिझकारने को है। ये तीर रखने को नहीं है, वैरियों का कलेजा छेदने को है। यह तलवार बाँधने की ही शोभा के लिए नहीं, शत्रुओं का सिर काटने को है। भला कोई मेरा शत्रु बन कर जीता रह सकता है? कोई नहीं। जब वैरियों की सेना, लड़ाई में, मेरी तलवार से कट-कट कर गिरेंगी तब युद्धभूमि में लहू की नदी बह निकलेगी। आज मेरी खड्ग से वैरियों के सिर लोहू टपकते हुए धरती पर गिरते दिखेंगे। आप यह न समझें कि मैं कह ही रहा हूँ। कर नहीं सकता। नहीं, नहीं, मैं अकेला ही सब वैरियों की सेना को मार सकता हूँ।

लक्ष्मण के ऐसे वचन सुन कर श्रीराम ने कहा—हे भाई! तुम धर्म और अधर्म को जानबूझ कर भी जो बात कहते हो सो ठीक नहीं है। धर्मशास्त्र की यह आज्ञा क्या तुम भूल गये कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का सबसे बड़ा धर्म है। जब लक्ष्मण को यह पूरा भरोसा हो गया कि श्रीराम अवश्य वन को जाएंगे। लाख उपाय करने पर भी किसी प्रकार रुक नहीं सकेंगे। जब श्रीराम ने देखा कि लक्ष्मण की मुझमें पूरी भक्ति है, वह हमारा वियोग नहीं सह सकेंगे और समझाने से नहीं समझेंगे तो उन्हें माता से आज्ञा लेने के लिए कहा। इतना सुनते ही मगन होकर लक्ष्मण अपनी माता से आज्ञा माँगने के लिए चल दिये। श्रीराम भी अपनी माता को समझा बुझा कर उनसे आज्ञा लेकर अपने महल में अस्त्र-शस्त्र लेने के लिए चले गये।

जब यह समाचार सीता ने सुना और अपने स्वामी को आते

देखा तब विकल हो उठ कर कहने लगी कि प्राणानाथ! अब आप ही अयोध्या को छोड़ वन को जाते हैं तब मैं यहाँ कर क्या करूँगी? मुझे भी अपने साथ ही लेते चलिए। मैं सब प्रकार से वन में आपकी सेवा करूँगी। मैं आपके वियोग में एक पल भी नहीं जी सकती। जिस प्रकार चन्द्रमा से चाँदनी अलग नहीं हो सकती, जिस प्रकार शरीर से छाया अलग नहीं हो सकती, उसी प्रकार मैं भी आपसे अलग नहीं रह सकूँगी। जो आप यह कहें कि वन में बड़े कष्ट उठाने पड़ेंगे तो मुझे वे सब स्वीकार हैं। आपके चरणों का दर्शन करती हुई मुझको वन में कुछ भी दुःख न होगा। इस प्रकार सीता ने श्रीराम के साथ वन जाने के लिए बहुत प्रार्थना की और श्रीराम ने भी उन्हें बहुत समझाया, परन्तु वह पतिव्रता स्त्री भला कब अपने पति के वियोग से जीना पसन्द कर सकती थी। कभी नहीं। अन्त में विवश हो श्रीराम ने अपने साथ चलने की उनको भी आज्ञा दे दी।

इसके पश्चात् निर्लज्ज कैकेयी ने स्वयं ही वल्कलवस्त्र सबके सामने लाकर दिये और बोली—लो पहन लो। राम ने अपने रेशमी वस्त्र उतार कर उन्हें धारण किया, लक्ष्मण ने भी अपने मूल्यवान वस्त्र उतार कर वल्कलवस्त्र धारण कर लिये। इसके पश्चात् श्रीराम ने सीता को वल्कलवस्त्र पहनाए। यह देखकर सब स्त्रियाँ रोने लगी और कहने लगी कि सीता तो वनवास के योग्य नहीं है। इन तीनों को तपस्वियों का वेश धारण किये हुए देखकर राजा एवं सभी रानियाँ अति व्याकुल हुई।

अब श्रीराम, सीता और लक्ष्मण वन जाने को तैयार होकर पिता जी को प्रणाम करने के लिए चले। सारी अयोध्या में श्रीराम के वनवास जाने की चर्चा फैल गई। प्रत्येक नगर निवासी शोकभरी दृष्टि से राजकुमारों और राजकुमारी को देखता था। मार्ग में इतनी भीड़ हो गई थी कि किसी को निकलने का भी स्थान नहीं मिलता था। इतने में राम, सीता और लक्ष्मण-सहित उस कोपभवन में पहुँचे जहाँ महाराज दशरथ शोक में बेहोश पड़े थे। जब राजा को कुछ होश हुआ और राम, सीता

और लक्ष्मण को मुनियों का वेष धारण किये हुए आते देखा तब प्रेम के मारे उनकी ओर दोनों हाथ फैला कर चले। परन्तु शोक ने उन्हें दबा लिया। वे बेहोश हो भूमि पर धड़ाम से गिर पड़े।

जब दोनों भाइयों ने राजा की यह दशा देखी तब धीरज धर मूर्च्छित पिता के पास पहुँचे और सब रानियाँ (कैकेयी को छोड़) हा राम! हा राम! कह कर रोने लगीं और बेहोश हो होकर गिर पड़ी। उस समय कोई भी सावधान न था जो राजा को उठाता। लाचार इन्हीं तीनों ने फिर राजा को पलंग पर लिटाया। अब तीनों सोच में हैं कि कोई औषध नहीं जिसे सुंघा कर होश में लायें। जल भी नहीं जो मुँह पर छिड़कें। पंखा नहीं जिससे हवा करें। अब तीनों बहू बेटे हैरान हैं कि क्या करें। लाचार इन्हीं तीनों ने अपने कपड़ों से हवा की और कुछ देर में राजा को होश आया।

अब श्रीराम अपने पिता को प्रणाम करके बोले कि पिता जी आप सबके स्वामी हैं। आपकी आज्ञा से हम वन जाने को तैयार हैं। हमारे साथ सीता और लक्ष्मण भी वन को जाते हैं। मैंने इनको बहुत समझाया, परन्तु ये मानते ही नहीं। लाचार हो मैं इनको भी अपने साथ लिये जाता हूँ। हाथ जोड़ कर प्रार्थना है कि इनको भी मेरे साथ वन जाने की आज्ञा दीजिए। इस प्रकार श्रीराम, सीता और लक्ष्मण अपने पिता और अपनी माताओं से आज्ञा लेकर चलने को तैयार हुए। इतने ही में सुमन्त सारथी रथ लाकर बोला कि महाराज की आज्ञा से यह रथ तैयार खड़ा है। आप इसमें सवार हो जायें। जहाँ आप आज्ञा करे मैं वहीं ले चलूँगा।

अब पहले सीता रथ पर चढ़ी और पीछे राम, लक्ष्मण भी अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर सवार हो गये। तब सुमन्त सारथी ने घोड़े दौड़ाये। उस समय सारी अयोध्या में कोलाहल मच रहा था। जिधर देखिए उधर ही राम के वनवास की चर्चा हो रही थी और सब शोक में डूब रहे थे। कोई कैकेयी के काम की बुराई करता था, कोई दशरथ की। श्रीराम की सब लोग बड़ाई करते हुए कह रहे थे कि भाई!

ऐसे धर्मात्मा पुत्र हमने किसी के नहीं देखे । देखो ! 14 वर्ष का वनवास व्यतीत करने खुशी से जा रहे हैं । अब सारे नगर-निवासी लोग क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बालक क्या वृद्ध, सभी श्रीराम के वियोग से दुःखी होते और रोते हुए हा राम ! हा राम ! कहते रथ के पीछे पीछे दौड़े हुए चले जा रहे हैं । जब रथ बहुत दूर निकल गया और उड़ती हुई धूल भी दीखनी बंद हो गई, तब लाचार होकर सब अयोध्या को लौट आये ।

अब श्रीराम, सीता और लक्ष्मण का रथ चलता-चलता तमसा नदी के पार पहुँच गया और आगे फिर अच्छा मार्ग पाकर शीघ्र बहुत दूर निकल गया । चलते-चलते गंगा के तीर पहुँच कर रात को वहाँ एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए रथ से उतरे ही थे कि इतने में वहाँ का राजा जो दशरथ के अधीन था और जो जाति का भील था, इनकी मेहमानी करने के लिए आया । उसने इनको अपनी नगरी में चलने के लिए बहुत कुछ कहा, परन्तु ये तो अब वनवास स्वीकार कर चुके थे, इनको नगर में जाने और अच्छे पलंगों पर सोने और भाँति-भाँति के भोजनों से क्या काम । श्रीराम ने राजा भील से कह दिया कि मैं आपका प्रेम देख कर बहुत प्रसन्न हुआ । परन्तु अब तो मैं ने पिता की आज्ञा का पालन करना है । इसलिए हम यहाँ जंगल में इस वृक्ष के नीचे रात बितायेंगे और यहाँ जो कुछ फल-मूल मिलेंगे उनसे निर्वाह करेंगे ।

अब श्रीराम ने लक्ष्मण के लाये हुए जल से हाथ पैर धो, संध्या की और कुछ जलपान कर वहीं कुछ पत्ते बिछा कर लेट गये । इसके पश्चात् लक्ष्मण, सीता ने भी हाथ मुँह धोया । अब श्रीराम और सीता दोनों सो गये और लक्ष्मण थोड़ी दूर पर जाकर बाण चढ़ाये, वीरासन लगाये रात भर जागते रहे । राजा भील भी लक्ष्मण के पास बैठ गये और लक्ष्मण से कहने लगे । हे राजकुमार ! श्रीराम तो सो गये, अब आपके और सुमन्त के लिए पलंग तैयार है । आप आराम करें, कष्ट

भोगने को हम तैयार हैं। इस पर लक्ष्मण ने कहा कि राजन्! तुमको ऐसा ही कहना चाहिए। परन्तु विचारिए तो सही कि भला मेरे बड़े भाई, जो मेरे पिता के समान हैं, वे तो भूमि पर सोवें और मैं पलंग पर आराम करूँ? भला ऐसा पाप मैं कभी नहीं कर सकता हूँ? आपने इन घोड़ों के लिए दाने घास का प्रबन्ध कर दिया है, बस यही आपका सब कुछ है।

प्रातः काल होने पर राम ने सुमन्त को आज्ञा दी कि तुम रथ अयोध्या को लौटा ले जाओ। पिता जी ने यहाँ तक आने के लिए तुमको आज्ञा दी थी। अब हम यहाँ से पैदल ही जायेंगे। तुम्हारे अयोध्या पहुँचने पर माता कैकेयी को भी पूरा निश्चय हो जायेगा कि अब राम ठीक-ठीक वन को गये। ऐसा सुनकर सुमन्त की आँखों में आँसू भर आये और गद्‌गद् वाणी हो गई। सुमन्त ने श्रीराम से उनके साथ वन जाने के लिए बहुत ही प्रार्थना की, परन्तु लाचार श्री राम के समझाने पर उसे अयोध्या को लौटना ही पड़ा।

इसके पश्चात् सुमन्त तो रथ में घोड़े जोत कर अयोध्या की ओर चल दिये और श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के साथ नाव में बैठकर गंगा जी के पार हो गये। नाव से उतर कर आगे-आगे लक्ष्मण जी चल दिये, मध्य में सीताजी और उनके पीछे श्रीराम चले। जो राजकुमार कभी बिना सवारी कहीं नहीं जाते थे, आज वे बिना देखे हुए मार्ग से चल रहे थे। प्रभुलीला जानी नहीं जाती। पल में कुछ का कुछ हो जाता है। जिस समय राम, लक्ष्मण और सीता जी तीनों मुनियों के वेष में वन को पैदल जा रहे थे, उस समय उनकी शोभा अवर्णनीय थी।

इस प्रकार चलते-चलते सायंकाल हो गई। तब ठहर कर सबने संध्या की और वार्तालाप करने लगे। जब सुबह हुई तो वहाँ से आगे को चल दिये। मार्ग में भाँति-भाँति के वन देखते हुए दक्षिण की दिशा को चलते-चलते थोड़ा ही दिन शेष रह गया। सामने प्रयाग-तीर्थराज

का दर्शन होने लगा। यमुना के मिलने का शब्द सुनाई देने लगा। इस प्रकार आते-आते सायंकाल के समय भरद्वाज मुनि के आश्रम पर प्रयाग में पहुँचे। आगे चल कर देखा तो मुनिराज अपने शिष्यों समेत हवन कर रहे हैं। राम, लक्ष्मण और सीता ने आगे बढ़कर भरद्वाज मुनि को प्रणाम किया और उन्होंने वन में आने के सब कारण उनको सुना दिये। भरद्वाज मुनि ने उनको आशीर्वाद देकर कुशल-समाचार पूछा और तीनों को आसन दिये, हाथ पैर धुलवाये और भाँति-भाँति के कंद, मूल, फल खाने को दिये।

श्रीराम ने भरद्वाज जी से कहा कि महाराज! हमें अब इस वन में 14 वर्ष व्यतीत करने हैं। आप हमको एकान्त में कोई ऐसा स्थान बतावें कि जो यहाँ से दूर हो और जहाँ भाँति-भाँति के फल-पुष्प वाले वृक्ष भी खूब हों। क्योंकि यदि हम यहाँ रहें तो यहाँ से अयोध्या समीप ही है। हमारा समाचार वहाँ अवश्य पहुँच जायेगा और फिर अयोध्यावासी यहाँ आकर बड़ी भीड़ लगावेंगे। इसमें हमको भी शोक होगा और आपके भी भजन में विघ्न पड़ेगा। इस प्रकार पूछने पर भरद्वाज ने इनके रहने के लिए चित्रकूट पर्वत का पता बता दिया, जो प्रयास से लगभग 34 कोस की दूरी पर है।

अब श्रीराम, लक्ष्मण और सीता सहित भरद्वाज मुनि को प्रणाम कर, उनके बताये हुए मार्ग से चित्रकूट पर्वत की ओर चल दिये और मुनि भी उनको आशीर्वाद देकर आश्रम में बैठ गये। अब दोनों भाई सीता को आगे किये हुए यमुना के तीर पर पहुँचे। देखा कि यमुना बड़ी गहराई और वेग से बह रही है। पार जाना चाहते हैं पर कोई नाव नहीं। फिर इन्होंने भरद्वाज की शिक्षा के अनुसार सूखे हुए बांस इकट्ठे किये और नाव बनाई। फिर उसमें वृक्षों की सूखी लकड़ी लगाकर हरी-हरी घास कूट-कूट कर छिद्रों में भर दी और लक्ष्मण ने नरम-नरम टहनियां बिछा कर सीता के लिए बैठक बना दी। सीता को इस पर बैठाकर उनके पास अपने अस्त्र-शस्त्र रख दिये।

पीछे से दोनों भाई भी चढ़े और नाव चलाई। जब नाव मंझदार में पहुँची तब सीता ने परमात्मा को याद किया और कहा हे देव! जो हम सर्वकुशल 14 वर्ष वन में बिता कर अयोध्या पहुँच जायेंगे और हमारा पतिव्रत धर्म पूर्ण बना रहेगा तो हम बहुत सी गायें दान करेंगे। परन्तु यह तब होगा जब श्रीराम को राजसिंहासन मिल जायेगा। ऐसा कहते-कहते दक्षिण का किनारा आया और वे उतरकर नाव वहाँ छोड़कर वन को चल दिये। अब मार्ग में जिस-जिस फल या फूल को सीता कहती जाती थी उसी-उसी को लक्ष्मण ला-ला देते थे। इतने ही में चलते-चलते वाल्मीकि का आश्रम आ गया और तीनों ने मुनि को प्रणाम किया। वाल्मीकि ने इनका बड़ा सत्कार किया। इन्होंने भी श्रीराम के ठहरने के लिए चित्रकूट ही उत्तम बताया।

अब श्रीराम, लक्ष्मण और सीता सहित चित्रकूट पर पहुँचे। इसे बड़ा मनोहर स्थान जान लक्ष्मण से कहा हे भाई! यहाँ सब प्रकार का सुख मिलेगा। यहाँ सब प्रकार के फल-फूलवाले वृक्ष भी हैं। बस कोई कुटी बन जाये तो यहाँ रहने लगें। इतना सुनते ही लक्ष्मण ने बहुत सुन्दर कुटी तैयार कर दी और इसमें एक और वेदी बनाई और तीनों के योग्य सोने के लिए अलग-अलग चबूतरे बना दिये। अब श्रीराम, लक्ष्मण और सीता सहित वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे।

उधर श्रीराम से विदा होकर सुमन्त को चलते-चलते अयोध्या दिखने लगी। सुमन्त को अयोध्या पहुँचते समय कुछ दिन शेष था। परन्तु यह सोच कर कि जो मैं अभी अयोध्या में जाऊँगा तो लोग मुझे मार्ग में ही रोक कर श्रीराम के विषय में पूछेंगे तो मैं उनसे किस मुँह से यह कहूँगा कि वे वन को चले गये और मैं लौट आया। इस लज्जा से, सुमन्त संध्या समय, जब कुछ अंधेरा हो गया तब, अयोध्या में गये। उधर राजा और रानियाँ रथ की आवाज़ सुनकर दरवाजे पर आ खड़ी हुई। अब राजा ने रथ को देखा तब हा राम! हा राम! कह कर मूर्च्छा

खाकर भूमि पर गिर पड़े। तब सुमन्त ने उन्हें उठाया और भीतर महल में ले गये। जब राजा की मूर्च्छा जागी तब सुमन्त से पूछने लगे कि राम, सीता और लक्ष्मण कहाँ है। जैसे-तैसे सुमन्त ने श्रीराम का गंगा तक पहुँचने का सब हाल राजा दशरथ से कह दिया।

उस समय राजा दशरथ को शोक ने बहुत ही दबा लिया था। किसी के समझाने से कुछ भी धीरज न होता था। सारी रात राजा को राम, लक्ष्मण और सीता को याद करते ही बीती। राजा को इसके वियोग से इतना दुःख हुआ कि वनगमन के 7वें दिन उनकी मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् राजा का दाह-संस्कार करने के लिये अयोध्या में उसका कोई भी पुत्र नहीं था। अतः वसिष्ठ की आज्ञानुसार राजा का शव तेल की नाव में सुरक्षित रखा गया। उन्होंने दूत को बुलाकर कहा कि तुरन्त भरत के पास जाओ। राजा की मृत्यु के विषय में एक शब्द भी नहीं कहना। केवल इतना कहना कि गुरु वसिष्ठ की आज्ञा है कि आप भ्राता सहित तुरन्त ही लौटे।

भरत को बहुत उदास देख कर उनके एक मित्र ने पूछा कि आज आप इतने उदास क्यों हैं। कहिए तो आपको क्या दुःख है? तब भरत ने अपने उस मित्र से कहा हे भाई! क्या कहें मैंने आज रात को एक बड़ा बुरा स्वप्न देखा है। हमको मुख्य फल दिखाई देता है कि मेरी या राजा दशरथ, या राम, या लक्ष्मण में से किसी एक की मृत्यु अवश्य होगी। इस कारण दुःख से मेरा गला सूख रहा है। इस प्रकार भरत बातें कर ही रहे थे कि अयोध्या का दूत कैकेयराज से मिलकर भरत के पास अचानक आया और उनसे कहने लगा कि राजकुमार। आपके कुलगुरु और पुरोहित वशिष्ठ ने और मंत्रियों ने आपको तुरन्त बुलाया है। उन्होंने कह दिया है कि बहुत आवयश्क काम है, आने में देर न करें। अब तो भरत, दूत की सटपटाती हुई वाणी में, आने को शीघ्र बुलाने की बात सुन कर और भी घबरा गये। दूत से बोले कि भला यह

तो कहो कि हमारे पिताजी तो प्रसन्न हैं! श्रीराम और लक्ष्मण तो प्रसन्न हैं? माता कौशल्या, सुमित्रा तो कुशल हैं। मेरी माता कैकेयी तो कुशल हैं और चलते समय तुमसे क्या कहा है? सब स्पष्ट कहो। दूत ने कहा कि सब प्रसन्न हैं। आपको शीघ्र बुलाया है। अब देर न कीजिए।

अब भरत, अपने नाना, मामा से आज्ञा लेकर तुरन्त रथ पर सवार हो अयोध्यापुरी की ओर चले। भरत को मार्ग में भी बुरे-बुरे शकुन दिखलाई देने लगे, तब तो उनका जी भय से और भी काँपने लगा। उनको अयोध्यापुरी पहुँचना भारी हो गया। जब वे अयोध्या के पास पहुँचे तब दूत से कहने लगे कि अरे भाई! यह मनोहर अयोध्या तो उजड़ी-सी दीखती है। इसमें तो सदा आनन्द के उत्सवों के बाजों की आवाज़ सुनाई पड़ती थी, वह आज नहीं सुनाई देती। आज तो सुनसान है। सड़कें भी बिना झाड़ी बुहारी ही पड़ी है। अरे! यहाँ तो सब मनुष्यों के चेहरों पर उदासी छाई है। बताओ तो क्या बात है? इतने ही में चलते-चलते राज-महल आ गया और वे रथ से उतर कर भीतर पहुँचे, देखा कि राजा अपने स्थान पर नहीं है। फिर यह सोच कर कि माता कैकेयी के महल में होंगे, आगे को चल दिये।

पाठकगण! उन बेचारे साधु को क्या खबर कि कैकेयी की करतूत से राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले गये और राजा की मृत्यु हो गई। वे बेचारे तो सीधेपन से वही अयोध्या और वही राज्य मानते हैं। कैसे शोक की बात है कि महल के भीतर भी आ गये परन्तु किसी ने सच्चा समाचार नहीं सुनाया। अब भरत अपनी माता कैकेयी के महल में पहुँचे। रानी कैकेयी भी बहुत दिन में अपने प्यारे बेटे को आते देख कर प्रेम से विह्वल हो उठी। अपनी जगह से उठ कर वह भरत की ओर बढ़ी। भरत ने भी अपनी माता के चरणों में प्रणाम किया और रानी कैकेयी ने भरत को छाती से लगाया। रानी के पूछने पर भरत कैकेय देश की कुशल अपनी माता से घबरा कर बोले, माता! यह तो बताओ कि हमें ऐसी जल्दी क्यों बुलाया है? पिताजी कहाँ है? शीघ्र

बताओ, हम उनका दर्शन किया चाहते हैं । रानी ने उत्तर दिया पुत्र वे प्रभु को प्यारे हो गये ।

यह सुनते ही भरत ''हाय ! मैं मरा । कह कर बेहोश हो गये । भरत बड़े शूरवीर थे, तुरन्त इस दुःख को न सह सके । थोड़ा देर में जब होश आया तब बोले, हाय ! यहाँ तो राजा ही न रहे । मुझे बड़ा शोक है । छाती फटी जाती है । हाँ यह तो बताओ कि पिता जी को क्या रोग हुआ था, जो इतनी शीघ्र उनका निधन हो गया ।

अब भरत की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है और इस प्रकार विलाप करने लगे श्रीराम बड़े भाग्यशाली हैं, उन्होंने मरते समय पिता जी की सेवा तो कर ली । हाय ! पिता जी को अब सुध भी नहीं कि मैं माता जी के घर आया हूँ । नहीं तो मेरा सिर अवश्य सूंघते । पिता जी का वह प्यार का हाथ कहाँ है ? जो मेरे शरीर पर फिरे । ऐसे विलाप करते-करते भरत बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े और थोड़ी देर में जब कुछ होश आया तब अपनी माता से पूछने लगे कि श्रीराम कहाँ हैं ? उनको तो मेरे आने का समाचार पहुँचा दो । मैं धर्म की रीति से जानता हूँ कि बड़े भाई पिता के समान होते हैं । इसलिए मैं उनके तो चरण छू लूं ।

कैकेयी ने कहा मेरे प्यारे लाल ! श्रीराम तो सीता और लक्ष्मण सहित तपस्वियों का वेष बना कर वन को चले गये । यह सुनकर भरत ने कहा कि श्रीराम ने तो कोई पाप नहीं किया फिर वे वन क्यों भेजे गये । रानी कैकेयी ने कहा कि उन्होंने कोई पाप तो नहीं किया था, परन्तु मैंने उनका राजतिलक सुन कर राजा से तुम्हारे लिए राज्य और राम के लिए 14 वर्ष का वनवास माँगा था । राम तो वन को चले गये और राजा की मृत्यु हो गई और तुमको राज्य दे गये हैं । इसलिए तुम कुछ शोक मत करो । इस बात को सुनकर भरत को बड़ा भारी दुःख

हुआ। वे कैकेयी से कहने लगे, भला श्रीराम के बिना हमें राज्य से क्या काम। अरी दुष्टा! अब क्यों घाव पर नमक डालती है। इधर तूने राजा को मारा और उधर श्रीराम को तपस्वी बना वन को भेज दिया। तूने तो हाय! हमारा सत्यानाश ही कर दिया। तूने तो अपने करने में कुछ कसर ही नहीं छोड़ी। अरी पापिन! मैं तेरा लक्ष्य पूरा नहीं करूँगा। अब तुझे दुःख देने के लिए मैं वन में जाकर श्रीराम को बुला, तेरे सामने ही उन्हें राजा बनाऊँगा। उस समय मैं देखूँगा कि तू क्या करती है। देख, तेरे ही सामने मैं श्रीराम का दास बन कर उनकी सेवा करूँगा। तूने मुझे ही नहीं सारी अयोध्या को दुःख दिया है। तुझे आवश्यक इसके बदले नरक भोगना पड़ेगा।

इतने ही में गहने कपड़ों से सजी हुई और मन में खुश होती हुई मन्थरा भी आ पहुँची। उसे देख कर लक्ष्मण के छोटे भाई की आँखें लाल हो गई और क्रोध के मारे होठ फड़फड़ाने लगे। जब कुबड़ी मन्थरा पास आई तब शत्रुघ्न ने उसके कूबड़ में बड़े ज़ोर से एक लात मारी और झट उसकी चोटी पकड़ कर उसी आँगन में घसीटने लगे। लातें मार-मार के उसकी नस-नस ढीली कर दी। भरत के समझाने पर शत्रुघ्न ने उसे छोड़ दिया। जब भरत और शत्रुघ्न की आवाज़ कौशल्या और सुमित्रा के महलों में पहुँची तब कौशल्या सुमित्रा से कहने लगी कि हे सुमित्रा! आज तो कैकेयी के पुत्र भरत की आवाज़ सुनाई देती है। उसे देखे हमें बहुत दिन हो गये। चलो उसे देख तो आवें। यह कह कर कौशल्या भरत को देखने के लिए चलीं।

उधर भरत और शत्रुघ्न भी कौशल्या के दर्शन को चल पड़े। परन्तु मार्ग में ही मिल गये। भरत और शत्रुघ्न दोनों कौशल्या के चरणों में गिर पड़े। कौशल्या ने उन्हें उठा कर बड़े प्यार से गले लगाया और रोने लगी। इस समय कौशल्या को श्रीराम के वियोग का दुःख बहुत याद आ गया था इसलिए वह मूर्च्छित हो गई। जब मूर्च्छा दूर हुई

तब भरत से कहने लगीं हे पुत्र ! कैकेयी ने तुम्हारे लिए यह राज्य बड़ी कठिनाई से पाया है । इसलिए अब यह राज्य तुमको मिल गया । हे पुत्र ! अब तुम निर्भय होकर इसके सुख को भोगो । परन्तु मैं नहीं जानती कि राम को 14 वर्ष का बनवास दिला कर उसको क्या मिल गया । वह कहती तो राम अपने आप ही तुमको राज्य दे देते । अब मेरी यह इच्छा है कि तुम्हारी माता मुझको और सुमित्रा को हमारे पुत्र के पास वन में भिजवा दे, या तुम ही आज्ञा दो तो हम अपने प्यारे श्रीराम के पास ही चली जावें । फिर तुम बेखटके राज करना ।

ये बातें सुनकर भरत को बड़ा दुःख हुआ । वे कौशल्या के चरणों में गिर पड़े । रोते रोते उन्हें मूर्च्छा आ गई । जब होश आया तो कौशल्या से बोले हे माता ! मेरा प्रेम जो श्रीराम में है और मैं श्रीराम को जितना चाहता हूँ यह सब तुम जानते ही हो । मुझे तो इन बातों का कुछ भी हाल मालूम नहीं । इस कारण मेरा कुछ भी दोष नहीं है । मुझको दोष न दो । हे माता ! जिसके परामर्श से श्रीराम वन को गये हों उसको सारे शास्त्र पढ़ने पर भी कुछ विद्या न आवे । उसको गायों के मारने का पाप लगे । जिसके परामर्श से श्रीराम वन को गये हों उसको वह पाप लगे जो गुरु, माता, पिता आदि बड़ों का अपमान करने से होता है । उसको वह पाप हो जो मित्रों के साथ धोखा देने में, प्रतिज्ञा करके उसको पूरा न करने में और जो स्त्री, बालक, बूढ़ों के रहते अपने आप अकेले ही मीठी चीज़ खाने में होता है । उसको वह पाप लगे जो बिना अपराध नौकर के छुड़ाने में हो । वह सदा संग्राम में हारे और सदा शत्रुओं से दबा रहे । वह शराब पीता रहे और जुआ खेलता रहे । वह सदा पाप किया करे । उसको यज्ञ बिगाड़ने का पाप लगे ।

उसको वह पाप लगे जो प्यासे को पानी न पिलाने में होता है । इस प्रकार सौगन्ध खाते-खाते जब भरत बेहोश हो गये तब कौशल्या ने उसको छाती से लगाया और कहा हे पुत्र ! तुम ऐसी सौगन्धों से मन थामते हो । तुमको दुःखी देख हमको भी दुःख होता है । तुम सच्चे

धर्मात्मा हो। तुमने अपना धर्म नहीं छोड़ा, इस कारण प्रभु तुमको कुशल रखे।

फिर वशिष्ठ की आज्ञा से भरत ने राजा दशरथ का अन्त्येष्टि संस्कार सम्पन्न किया। इसके पश्चात् सब मंत्रियों ने और सब माताओं ने भरत को राज्य करने के लिए बहुत कुछ समझाया; परन्तु वे बड़े धर्मात्मा और श्रीराम के बड़े प्यारे थे। अतः उन्होंने सबसे यही कह दिया कि रघुकुल में सदा से यह रीति चली आई है कि सबसे बड़ा भाई राजा बने और धर्म से होना भी ऐसा ही चाहिए। फिर आप लोग मुझसे ऐसा पाप क्यों कराते हो। भला श्रीराम के होते हुए मैं कैसे राजकाज कर सकता हूँ। ऐसा पाप कर्म मैं नहीं कर सकता। जो कहो कि श्रीराम तो वन को चले गये, उनके पीछे तुमको ही राजकाज करना चाहिए, तो मैं सौगन्ध खा कर कहता हूँ कि मैं बिना श्रीराम के राज्य कभी न लूँगा। मैं अभी श्रीराम के दर्शनों को जाता हूँ और उनको वापिस ला राजतिलक कराकर उनकी सेवा करूँगा।

वशिष्ठ ने भी भरत को बहुत कुछ समझाया, परन्तु भला वे कब मानने वाले थे। उन्होंने वशिष्ठ से कहा कि गुरुजी, मुझे आपके परामर्श पर बड़ा ही दुःख होता है। क्या मैं राजा दशरथ का पुत्र नहीं हूँ जो ऐसे पापकर्म करूँ? गुरुजी मैं आपसे ठीक कहता हूँ। मैं अब श्रीराम को बुलाने के लिए अवश्य जाऊँगा और सबके समझाने से श्रीराम चले ही आवेंगे और जो नहीं आये तो मैं भी उनके साथ वन में ही रहूँगा। उनके बिना मुझको इस अयोध्या से कुछ मतलब नहीं। जब भरत श्रीराम के पास वन को चलने लगे तब इनकी माताएँ, उनकी सेनाएँ और बहुत से पुरवासी लोग उनके मना करने पर भी श्रीराम को देखने के लिए भरत के पीछे पीछे चल दिये। अब सब लोग बड़ी खुशी में हैं कि हमको श्रीराम के दर्शन होंगे। उनको यहाँ बुला लायेंगे और उनको राजा बनाकर सब सुख से रहेंगे।

जिस मार्ग से श्रीराम वन को गये थे, उसी मार्ग से भरत भी पूछते-पूछते जाने लगे। भरत को भरद्वाज और वाल्मीकि ने श्रीराम का

ठीक पता दे दिया। श्रीराम चित्रकूट पर्वत पर वास करते हैं। भरत उसी ओर चल दिये। जब चित्रकूट थोड़ी ही दूर रहा तब भरत श्रीराम की कुटी को देखने के लिए एक बड़े ऊँचे पेड़ पर चढ़ गये। वहाँ से उनकी कुटी और अग्नि हवन का धुआँ दिखाई देने लगा। अब भरत को मन में बड़ी खुशी हुई। नीचे उतर कर उन्होंने वशिष्ठ से कहा कि आप सब माताओं को लेकर पीछे-पीछे आइये। सब को वहाँ ठहरने की आज्ञा देकर आप शत्रुघ्न और सुमन्त के साथ श्रीराम की कुटी की ओर पैदल ही चल दिये।

जब भरत की सेना इस वन में पहुँची तब बहुत सी धूल उड़ती देख और बनैले जीवों को इधर-उधर भागते देख श्रीराम ने कहा– हे लक्ष्मण! देखो तो यह बड़ा कोलाहल कहाँ मच रहा है? ये हाथी, भैंसे, हिरन आदि जीव सिंहों से डर कर तो नहीं भागे या कोई राजकुमार तो शिकार खेलने नहीं आया? देखो तो यह हल्ला गुल्ला क्या मच रहा है? यह सुन लक्ष्मण तुरन्त एक बड़े ऊँचे पेड़ पर चढ़ कर चारों ओर देखने लगे। उत्तर दिशा में बहुत हाथी, घोड़े और सेना सी दिखाई पड़ी। यह देखते ही लक्ष्मण उस पेड़ पर से उतर श्रीराम से बोले कि महाराज! यह तो बड़ी भारी सेना है। अब आप सीता को किसी गुफा में बिठा कर अपने कवच आदि पहन लीजिए और इस सेना को मार भगाइए। श्रीराम ने कहा कि यह किसकी सेना है।

इस पर लक्ष्मण बड़े क्रोध में होकर बोले कि महाराज! है वही कैकेयी के पुत्र भरत हम दोनों को मारने के लिए आये हैं। उन्हीं की सेना है। देखिए, यह धूल उड़ती चली आ रही है। अब हमको अस्त्र-शस्त्र बाँधकर युद्ध के लिए तैयार हो जाना चाहिए। आज हम भरत को संग्राम में देखेंगे जिसके कारण आपने, हमने और सीता ने राजपाट छोड़ा। हे वीर, ये वही तो भरत आ रहे हैं। अब हम इनको मार डालेंगे। इनके मारने में कुछ पाप भी नहीं होगा, क्योंकि जो पहले

दुःख दे उसका मारना कुछ बुरा नहीं है। बस, भरत के मारे जाने पर आप निर्भय राज्य करना। निस्संदेह राज्य के लोभ में कैकेयी आज अपने पुत्र को हमारे हाथ से मरा हुआ देखेगी। पीछे से उसके बाप भाई भी, जो इसकी सहायता करने आयेंगे, सब मारे जायेंगे और फिर आप भी मारी जायेगी। आज धरती बड़े भार से हल्की होगी और हमारा भी क्रोध उतर जायेगा। आज आप हमारे तीरों से भरत की सारी सेना कटी देखेंगे। आज चील, कौए, गीदड़ और कुत्ते भी पेट भर भोजन पायेंगे।

लक्ष्मण को बहुत क्रुद्ध देख कर और उनके क्रोध और वीर रस से भरे हुए वचनों को सुनकर श्रीराम कहने लगे, कि भाई, यहाँ अस्त्र-शस्त्र का क्या काम। यहाँ तो महा बलवान् और धर्मात्मा भरत आ ही रहे हैं। मैं तो पिता जी से 14 वर्ष वनवास की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अब भला भरत को मार कर सारी दुनियाँ में अपनी बुराई करावेंगे। कभी नहीं! हे लक्ष्मण! जो चीज़ अपने भाई-बंधु के नाश से मिले, उसे हम बहुत बुरी समझते हैं? भाइयों की हानि से मैं अपना सुख नहीं चाहता। नहीं तो तुमसे वीर के होते हमको सारी पृथ्वी का राज्य मिलना कठिन नहीं है। परन्तु पाप से तो हम तीनों लोक का भी राज्य नहीं चाहते हैं। मेरी समझ में तो जब ननसाल से आये होंगे तब उन्होंने हमारे वन का समाचार सुना होगा।

भरत धर्मात्मा तो है ही, अपनी कुल-रीति और धर्म-मर्यादा को याद कर, माता को बुरा भला कह, पिता जी से आज्ञा लेकर हमसे मिलने और राज लौटाने को आये होंगे। ऐसा नहीं हो सकता कि भरत हमको दुःख देने आये हों। क्या कभी भरत से तुम्हारी अनबन हो गई थी जो ऐसा विचार करते हो? देखो! अब तुम भरत से कोई कड़ी बात न कहना और यदि कोई भी कड़वी बात तुमने भरत से कही तो मुझे ही कही समझना। जो राज्य के लोभ से तुम ऐसा समझते हो तो जब भरत मुझसे मिलेंगे तब मैं उनसे कह दूँगा कि तुम राज्य लक्ष्मण को दे दो।

याद रक्खो ! जिस समय मैंने भरत से कहा, वे तुरन्त ही राज्य तुमको दे देंगे । यह सुनकर लज्जा के मारे लक्ष्मण का सिर नीचा हो गया । श्रीराम से उन्होंने क्षमा माँगी और कहा कि अब मैं भरत को पिताजी के समान समझूंगा ।

भरत, अपने भाई शत्रुघ्न, गुरु मंत्रियों आदि समेत चलते- चलते श्रीराम की कुटी के पास आ गये । बस देखते ही शोकातुर हो रोने लगे और बोले—हा ! जिन श्रीराम के शरीर में सुगन्धित केसर, चन्दन, कपूर आदि लगाये जाते थे, आज उनके शरीर में धूल लग रही है । हा ! जिसके कारण बड़े भाई को इतना कष्ट पहुँचा उस मेरे जीवन को धिक्कार है कि जिसकी संसार भर में निन्दा हुई । ऐसे कहते-कहते भरत ने श्रीराम के चरण छूने के लिए हाथ बढ़ाये, परन्तु हाथ न पहुँचे । शोक से बेहोश होकर वे भूमि पर गिर पड़े । शत्रुघ्न ने श्रीराम के चरणों में प्रणाम किया और फिर श्रीराम ने दोनों भाइयों को उठा कर छाती से लगा लिया । हे तात ! तुम तो बहुत दिनों से ननसाल को गये थे । बहुत दिन में मिलने और दुर्बल हो जाने के कारण मैंने तुमको देर में पहचाना । भला तुम वसिष्ठ की सेवा तो करते हो ? भला कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा तो कुशल हैं ?

इतना सुनकर भरत ने कहा कि महाराज, आप मुझसे राजनीति की बातें क्यों पूछते हैं ? मुझे इनसे क्या काम ? हमारी तो कुलरीति है कि बड़े भाई के होते छोटा भाई राजा नहीं हो सकता, इसलिए आप हमारे साथ अयोध्या चलें और कुल की बात रखने के लिए राजतिलक करा कर राजा बनें और प्रजा की रक्षा करें । क्योकि जिन राजा को मनुष्य राजा मानते थे वे तो देवता हो गये । हम तो कैकय देश में रहे, और आप वन में । वहाँ आपके शोक में पिताजी की मृत्यु हो गई । अब उठिये, सीता और लक्ष्मण-सहित चल कर अयोध्या को फिर से बसाइये । हे राम ! आपने मेरी माता की इच्छा पूरी की और मुझे राज्य दिया । परन्तु अब आपका वही राज्य मैं आपको देता हूँ ।

अब श्रीराम ने भरत के मुँह से राजा दशरथ के निधन का

समाचार सुना तब ''हा !'' कह कर दोनों हाथ माथे पर रख मूर्च्छित हो गये। जब मूर्च्छा टूटी तब भरत से बोले—भैया ! जब पिता जी ही स्वर्ग को चले गये तब अयोध्या जाकर क्या करेंगे। इतने ही में सब मनुष्य और वशिष्ठजी भी माताओं-सहित श्रीराम की कुटी पर आ पहुँचे। श्रीराम सबसे मिले और माताओं के चरणों में गिर पड़े। लक्ष्मण ने भी पाँव छूकर माताओं की वन्दना की और सीता भी सासुओं के चरण छू रोने लगी।

माताओं ने मिलकर राम से अयोध्या चलने के लिए बहुत कुछ कहा, परन्तु श्रीराम कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे जो राजसिंहासन के लोभ में आकर अपने धर्म को छोड़ देते। क्योंकि उनको त्रिलोकी का सारा राज्य भी धर्म के सामने तिनके के समान था। उन्होंने सबको समझा दिया और भरत से बोले—भाई ! तुम्हारा प्रेम हम सब जानते हैं। तुम बड़े धर्मात्मा हो। तुम्हारा कुछ दोष नहीं। जो कुछ होने वाला होता है उसे कोई टाल नहीं सकता। अब तुमको चाहिए कि जिस प्रकार हम पिताजी की आज्ञा मानकर वन को चले आये उसी प्रकार तुम भी उनकी आज्ञा से अयोध्या में बस, वहाँ का सब राज्य संभालो। यही तुम्हारा धर्म है। शत्रुघ्न तुम्हारे साथ है। तुम सब काम कर सकते हो।

जब किसी के समझाने से भी श्रीराम ने अयोध्या को लौटना नहीं चाहा तब हार कर भरत ने श्रीराम से कहा कि हे आर्य ! जाने दीजिए। अपनी इन पादुकाओं पर अपने चरण रख दीजिए तो हम इन्हीं को राजसिंहासन पर रख कर, इनके सहारे से सब राज-काज कर लेंगे। श्रीराम ने अपनी पादुकायें उतार कर भरत को दे दी। भरत ने श्रद्धापूर्वक उन्हें स्वीकार कर शिरोधार्य किया। भरत की आँखों में गंगा यमुना के समान अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उस समय भरत ने कहा—

ये चरण पादुकायें करुणासिंधु के पाँवों की रक्षक नहीं वरन् समस्त मानवता के जीवन एवं समृद्धि की संरक्षक है। ये राम के भ्रातृप्रेम

रूपी कोष की तिजोरी हैं। ये उस दुर्ग के रक्षा द्वार हैं। जिसमें रघुवंश का यश प्रतिष्ठापित है। ये वे दो हस्त हैं जो सदैव सत्कर्मों में रत रहते हैं। ये तो संसार के दो नेत्र हैं। ये सीता और राम के प्रतीक रूप में हमारे साथ अयोध्या आ रहे हैं।

उन्होंने अयोध्या के नागरिकों तथा साम्राज्य के सभी भागों से जन प्रतिनिधियों को बुलाकर राजधानी में हुई घटना व वन में राम के निवास स्थल के विषय में बताया। उन्होंने राम के साथ अपने वार्तालाप को संक्षेप में बताया और उनसे निवेदन किया कि 14 वर्षों तक राम की अनुपस्थिति में वे राम की पादुकाओं से ही शासन के सभी कार्य करेंगे। उन्होंने कहा–

मैं 14 वर्ष तक मुनि वेष में नगर के बाहर रहूँगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि 14 वर्ष के पूरे होते ही उसी दिन जो आपका दर्शन अयोध्या में मुझको न होगा तो मैं तुरन्त आग में भस्म हो जाऊँगा।

तत्पश्चात् धर्मनिष्ठ भरत नन्दीग्राम की ओर गये जहाँ उन्होंने अपने निवास हेतु एक पर्णकुटी बना ली थी। उन्होंने राम और लक्ष्मण के समान ही अपने केशों की गाँठ बांध ली और उनकी भाँति ही वल्कल वस्त्र धारण कर लिये। उन्होंने भूमि में गुफा बनाकर उसमें वास किया। उनका भोजन और वेश-भूषा भी वन के उन शांत तपस्वियों समान थी। उनके कार्य, विचार और शब्द भी तापसिक तथा आध्यात्मिकता से दीप्त थे।

(3) अरण्यकाण्ड

भरत के चले जाने के पश्चात् एक दिन श्रीराम ने लक्ष्मण और सीता से परामर्श किया कि अब हमको चित्रकूट पर नहीं रहना चाहिए, क्योंकि अब यहाँ का पता अयोध्यावासियों को लग गया है। जब-जब उन लोगों को हमारी सुध आएगी तब-तब वे झट यहाँ आ कर हम लोगों को तंग किया करेंगे, रात दिन भीड़ लगी रहेगी। इससे ऋषियों

को भी कष्ट होगा और हमको सदा उन्हीं का ध्यान बना रहेगा, भजन आदि कुछ न हो सकेगा। अतः यहाँ से कहीं और किसी वन में चलना चाहिए।

अतः श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के परामर्श से वन को चल दिये और अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ अत्रि मुनि ने इनका बहुत कुछ आदर किया। बहुत से कंद, मूल, फल खाने को दिये। अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया थी जोकि बड़ी ही धर्मात्मा थी। सीता ने उनको प्रणाम किया। अनसुया ने उनको आशीर्वाद देने के उपरांत बहुत प्रकार से स्त्रियों के धर्म का उपदेश दिया।

उस दिन श्रीराम उसी आश्रम में रहे। प्रातःकाल होने पर अत्रि मुनि से आज्ञा लेकर आगे को चल दिये। चलते-चलते इनको एक बड़ी डरावनी, आवाज़ सुनाई दी। उस आवाज़ से दोनों भाइयों को तो कुछ डर न लगा, परन्तु सीता बहुत घबरा गई। थोड़ी ही दूर आगे चले होंगे कि एक राक्षस आता दिखाई दिया। उसका रूप बड़ा डरावना था। वह बहुत लम्बा चौड़ा था। उसकी आवाज़ को सुनकर वन के बड़े-बड़े जीव भी डर कर भाग जाते थे। वह राक्षस श्रीराम की ओर गर्जता हुआ दौड़ा और बोला—तुम दोनों जटा चीर रक्खे, स्त्री-सहित वन में आये हो, इसलिए अपने को मरा ही समझो। तपस्वी बन कर तो आये हो किन्तु ये तीर कमान क्यों ले रक्खे हैं? फिर यह बताओ कि तुम दोनों अगर तपस्वी हो, तो यह स्त्री तुम्हारे साथ क्यों है? वह भी दोनों के बीच में एक। इससे हमको तुम बड़े दुराचारी जान पड़ते हो। बताओ तुम कौन हो, जो मुनियों के वेष में बट्टा लगाते फिरते हो? मैं विराध नामी राक्षस हूँ। इसी वन में रहता हूँ और सदा ऋषियों का माँस खाता हूँ। इस स्त्री को मैं अपनी स्त्री बना कर और तुम्हें मार कर अभी खून पीऊँगा।

इस प्रकार बड़े वेग से आकर उस राक्षस ने राम व लक्ष्मण के मध्य में से सीता को पकड़ कर कन्धे पर बिठा लिया। उस समय सीता डर से काँपने लगी। श्रीराम जी बहुत उदास होकर लक्ष्मण से कहने

लगे कि देखो लक्ष्मण, मेरी पतिव्रता स्त्री सीता राक्षस के कन्धे पर बैठी है। कहाँ राजकुमारी और कहाँ राक्षस! अहो! अब कैकेयी का मनोरथ सफल हुआ। उसे अपने बेटे को राज दिला कर ही सन्तोष नहीं हुआ, उसने बड़ी दूर तक सोच लिया था। वह जानती थी कि जो ये यहाँ रहेंगे तो शायद कभी राज में कुछ गड़बड़ करें, इसलिए उसने मुझे वनवास दिला दिया। उसकी इच्छा अब पूरी हो गई।

श्रीराम को इस प्रकार दुःखी देख कर लक्ष्मण को भी दुःख हुआ। वे क्रोध से आँखें लाल करके बोले—हे वीर! आप ऐसी बातें क्यों करते हैं? आप देखते रहिए, हम अभी अपने पैने बाणों से इस राक्षस को मारे डालेगें। जो क्रोध मुझको आपके वन आने पर भरत पर हुआ था वह क्रोध अब इस राक्षस पर काम देगा। अभी-अभी यह मारा जाएगा और इसका रक्त पीकर यह धरती तृप्त हो जायेगी। फिर विराध से कहा कि तुम कौन हो जो इस वन में मनमौजी की भाँति घूमते फिरते हो? विराध ने फिर बड़े जोर से कहा कि तुम दोनों कौन हो, कहाँ जाओगे, जल्दी बताओ? श्रीराम ने कहा कि हम इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय हैं। राक्षस ने कहा कि 'जय मेरा पिता और सत्हृदया मेरी माता है'। ब्रह्माजी का तप कर हमने यह वर पाया है कि मामूली शस्त्रों से मैं नहीं मारा जा सकता और न मेरा कोई अंग कट सकता है। इससे अधिक मत पूछ। अब तुम इसको यहाँ छोड़ो और जिस मार्ग से आये हो उसी मार्ग से चुपके चले जाओ। इस समय मैं तुम्हारे प्राण लेना नहीं चाहता।

श्रीराम को उस राक्षस के ऐसे गर्व के वचन सुन कर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा—अरे नीच! अब मैंने जाना कि तेरे सिर पर काल खेल रहा है। तू अब अवश्य मारा जायेगा। अब मैं तुझको जीता नहीं छोड़ूँगा। इतना कह कर श्रीराम ने बड़ी सावधानी से उस राक्षस को निशाना बना कर, एक दम ही सात बाण ऐसे जोर से मारे कि उसके शरीर को पार कर दूसरी ओर भूमि पर जा गिरे। तीर लगते ही विराध बड़ा व्याकुल हुआ और क्रोध में आ, सीता को धरती पर बिठा, त्रिशूल हाथ में ले, मुँह फैला कर श्रीराम और लक्ष्मण की ओर दौड़ा। इधर इन दोनों भाइयों ने भी उसके ऊपर तीरों की वर्षा आरम्भ कर दी। उधर

विराध ने हँस कर जम्हाई ली तो उसके शरीर से सब तीर बाहर निकल कर आ गये। उन तीरों से वह राक्षस नहीं मरा। अब वह राक्षस त्रिशूल उठा कर श्रीराम की ओर दौड़ा और पास आकर मारना ही चाहता था कि तुरन्त श्रीराम ने भी अपने पैने-पैने बाणों से इसका त्रिशूल काट दिया। फिर ये दोनों भाई भी तलवार लेकर उसको मारने के लिए दौड़े। उस राक्षस ने दोनों को पकड़ कर कंधों पर बैठा लिया और कहीं दूर फेंकने के लिए लेकर चल दिया।

प्रिय पाठकगण ! वह प्रथम अवसर था कि सीता के सामने एक राक्षस दोनों भाइयों को पकड़ लिये जा रहा है। उस समय सीता की दशा देखने योग्य थी। वह सोच रही थी कि देश छूटा, राजपाट छूटा, माता-पिता छूटे और अब इन धर्मात्माओं को भी यह राक्षस लिये जाता है। न जाने क्या करेगा? लाचार सीता उदास होकर रोती-रोती उस राक्षस से कहने लगी कि हे विराध, जब तू इन दोनों भाइयों को लिये जाता है, तब मुझे यहाँ क्यों छोड़ता है? मुझे यहाँ वन के जीव खा जायेंगे। इसलिए मैं हाथ जोड़ कर विनती करती हूँ कि या तो मुझे भी साथ ले चल या इन दोनों भाइयों को भी छोड़ दे।

अब श्रीराम ने देखा कि सीताजी बड़ी बेचैन है, उनसे यह दुःख नहीं देखा जाता, तब दोनों भाइयों ने विराध के मारने का प्रबंध किया। ऊपर चढ़े ही चढ़े इस राक्षस का बायाँ हाथ लक्ष्मण ने और दाहिना हाथ श्रीराम ने इतने ज़ोर से पकड़ कर मरोड़ा कि कड़ाक से दोनों हाथ टूट गये। हाथों के टूटते ही विराध बेहोश होकर पर्वत की तरह धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा। उसके गिरते ही दोनों भाइयों ने उसको उठा-उठा कर पत्थर की चट्टानों पर खूब ही पटका, परन्तु इतने पर भी वह राक्षस मरा नहीं, तब श्रीराम यह सोच कर कि इसको वरदान के कारण हम युद्ध में नहीं मार सकते, आप तो उसके गले को पाँव से दबा कर खड़े हो गये और लक्ष्मण से कहा कि तुम एक गढ़ा खोदो। इतना कहते ही विराध के प्राण निकल गये और दोनों भाइयों ने उसे एक गड्ढे में दबा दिया। उसके मरने से ऋषियों को बड़ी प्रसन्न्ता हुई और सीता भी प्रसन्न हो श्रीराम के चरणों में आ गिरी। अब श्रीराम सीता और

लक्ष्मण को साथ लेकर शरभंग ऋषि के आश्रम की ओर चल दिये। जब आश्रम में पहुँचे तब तीनों ने मुनि को प्रणाम किया और आज्ञा पाकर बैठ गये।

शरभंग मुनि ने श्रीराम से कहा कि आपके आने का समाचार हम अपने तपोबल से पहले ही जान चुके थे। यह भी निश्चय ही था कि आप आने वाले हैं। आपके दर्शनों के ही लिए मैं अभी यहाँ ठहरा हुआ हूँ नहीं तो मैं कभी का स्वर्ग चला गया होता। आपने बड़ी कृपा की कि जो हमें दर्शन दिया। अब मैं सब कर्मों से छूट चुका हूँ। अब, आपके देखते ही देखते, मैं योग द्वारा इस शरीर को छोड़ कर स्वर्ग को जाता हूँ। आप यहाँ से सुतीक्ष्ण के आश्रम को जाएं। वहाँ आपको सब प्रकार का सुख मिलेगा। इतना कह कर मुनि ने समिधायें एकत्रित की और यज्ञ किया तथा पूर्णाहुति में आप ही बैठ गये। बैठते ही उने शरीर को अग्नि ने भस्म कर दिया।

शरभंग मुनि के परलोक-गमन का समाचार सुनकर बहुत से ऋषि मुनि वहाँ इकट्ठे हो गये और श्रीराम से कहने लगे कि हे राजकुमार! आप इस पृथ्वी के इक्ष्वाकुवंशी राजा हैं। देश-विदेश में आपकी शूर-वीरता फैल रही है। आज इस पृथ्वी पर आपके समान बलवान् कोई राजा नहीं। जिस तरह पानी में बहते हुए को कुछ सहारा मिल जाने से बड़ी प्रसन्नता होती है। उसी तरह आपको पाकर हमें भी बड़ी प्रसन्नता हो रही है। देखिए! यहाँ कैसा घोर अनर्थ हो रहा है कि राक्षस लोग ऋषियों को मार कर खा जाते हैं और हमारे यज्ञ में बड़ा विघ्न डालते हैं।

पम्पा नदी से मन्दाकिनी और चित्रकूट तक ये लोग बड़ा ही उपद्रव करते हैं। अब हम लोग आपकी शरण में हैं। अब आप ही हमको बचाइये। भला अब आपके अतिरिक्त हमारा और कौन रक्षक है? ऋषियों को दुःखी देख श्रीराम ने कहा कि महाराज, हम आप लोगों की सेवा करने को ही यहाँ आये हैं। यह तो ठीक है कि मैं पिता की आज्ञा-पालन करने को घर से निकला हूँ, परन्तु पिता की आज्ञा का

पालन तो और जगह भी हो सकता था। अब आप हमारा और हमारे भाई का पौरुष देखेंगे कि क्या करते हैं। आप चिन्ता न करें। हम अवश्य ही इन राक्षसों को मारेंगे।

इसके पश्चात् श्रीराम उन ऋषियों से विदा होकर सुतीक्ष्ण जी के आश्रम को चल दिये। वहाँ एक रात ठहर कर सुबह अगस्त्य मुनि के आश्रम को चले। रास्ते में सीता ने श्रीराम से कहा कि हे स्वामिन् धर्म की बड़ी सूक्ष्म गति है। वह बड़े आडम्बर से नहीं मिल सकता। इस आडम्बर में तीन दुःख होते हैं–(1) झूठ बोलना, (2) परस्त्रीगमन और (3) बिना वैर किसी को मारना। सो पहली दो बातें तो आपमें कभी नहीं हुई। परन्तु यह तीसरी बात जीव-हिंसा की आपमें मौजूद हैं। क्योंकि आप अभी ऋषियों से प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि हम आपके दुःख देने वाले राक्षसों को मारेंगे। जब से आप इस दण्डक वन में आये हैं तब से ही आपमें यह बात पैदा हुई है। इससे हमको बड़ी सोच है। मैं सोचा करती हूँ कि इसका फल क्या होगा।

मैं तो आपका इस वन में आना अच्छा नहीं जानती। क्योंकि आप दोनों भाई शस्त्र बाँधे हुए हैं और क्षत्रिय तो हैं ही। क्षत्रिय के पास शस्त्र और अग्नि के पास सूखा ईंधन हो तो अवश्य वे इनका बल बढ़ाते हैं। मैं आपको कुछ शिक्षा नहीं करती, मैं तो आपके प्यार से ऐसी बात कहती हूँ। अतः आप बिना अपराध किसी के मारने का विचार न कीजिए। जो आप कहे कि फिर क्षत्रियों को शस्त्र धारण करने से क्या मतलब, तो वन में विचरते हुए क्षत्रियों का धनुष धारण करना, निरपराध जीवों के मारने को नहीं वरन् वन में जो दुःखी लोग हैं उनकी रक्षा करने के लिए है। इसलिए आप हम दोनों की ही रक्षा कीजिए।

भला कहाँ शस्त्र का बाँधना और कहाँ वन में घूमना। कहाँ क्षत्रिय का धर्म और कहाँ तपस्या करना। इसलिए जहाँ का जो धर्म हो वहाँ वही करना चाहिए। यहाँ वन में आपको शस्त्रों से क्या काम? जब आप अयोध्या जायें तब फिर शस्त्र धारण कर लेना। आपकी माता की भी यही आज्ञा थी कि मुनि-वेष बना कर वन में बसना। कुछ

क्षत्रिय-वेष बनाने को तो उन्होंने कहा ही न था। जिस धर्म की आपको आज्ञा है वही कीजिए। क्योंकि धर्म ही से अर्थ और धर्म ही से सुख होता है। इस संसार में एक धर्म ही सार है। इसलिए आप भी अपने धर्म पर रहिए।

सीता के ऐसे वचन सुनकर श्रीराम ने कहा कि हे सीते! तुमने जो बातें कही हैं वे बहुत अच्छी हैं। अब मैं तुम्हारी बातों का उत्तर देता हूँ। सुनो। क्षत्रिय लोग जो धनुष धारण करते हैं, वह इसलिए कि कोई दुःखी होकर दुःख की बातें न सुनावे। क्षत्रियों को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि किसी के दुःखित वचन उनके कान तक न पहुँचे। इसलिए एक नहीं यहाँ तो अनेक ऋषि दुःखी होकर हमारी शरण आये हैं। ये ऋषि लोग इन राक्षसों से बहुत सताये गये हैं। यहाँ के राक्षसों ने बहुत से ऋषि खा डाले हैं। जो बचे हैं वे हमारी शरण आये हैं। हमने उनको दुःखी देख कर प्रतिज्ञा की है कि हम आपकी सेवा करेंगे और आपके शत्रु राक्षसों को मारेंगे। हे सीते! मैंने ऋषियों के सामने ऐसा प्रण किया है। अब, जब तक मेरा शरीर है और जब तक शरीर में प्राण रहेंगे तब तक उनकी रक्षा करके अपने वचन पूरे करेंगे।

इस प्रकार वार्ता करते हुए श्रीराम, लक्ष्मण व सीता-सहित सुतीक्ष्ण के आश्रम में पहुँचे। वहाँ सुतीक्ष्णजी से मिलकर और उनके बताये हुए मार्ग से फिर अगस्त्य मुनि के आश्रम को चल दिये। जब वहाँ पहुँचे तब इनको देख कर अगस्त्य मुनि बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अनेक फल, मूल, कंद इन्हें खाने को दिये। ये रात भर वहीं रहे। जब प्रातःकाल हुआ तब श्रीराम ने अपने रहने के लिए अगस्त्यजी से किसी अच्छे स्थान का पता पूछा, तो उन्होंने सब ऋतुओं में सुख देने वाली 'पंचवटी' नामक स्थान, जो दण्डक वन में था, बता दिया। अब अगस्त्य मुनि से विदा होकर श्रीराम उनके बताये हुए मार्ग से पंचवटी पर पहुँच गये। पंचवटी पर पहुँच कर लक्ष्मणजी ने एक बहुत सुन्दर कुटी बनाई। उस कुटी को देखकर श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए और तीनों उसमें सुख से रहने लगे। पंचवटी में रहते हुए श्रीराम ने लक्ष्मण को धर्म और नीति के अनेक उपदेश दिये।

इस प्रकार आपस में बातें करते-करते बहुत दिन व्यतीत हो गये। एक दिन सीता को साथ लेकर दोनों भाई गोदावरी नदी में स्नान करने के लिए गये। जब वहाँ से आकर अपनी कुटी में तीनों सुख से बैठ गये तब, उस समय एक राक्षसी घूमती फिरती श्रीराम की कुटी के पास आई और उनके सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गई।

यौवन की देहली पर खड़ी कामोन्मत रावण की अद्वितीय सुन्दर छोटी बहन श्रीराम की मनोहर छवि पर मोहित हो चुकी थी। राम के हृष्ट-पुष्ट एवं सुगठित बदन की कांति उस राजकुमारी को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। कामदेव के वश में हुई उसकी सुन्दर देह श्रीराम में लीन हो जाना चाहती थी। वह उनके भुजपाश में बंध जाने को उतावली हो रही थी। वह राम की मनोहर छवि और यौवन देखकर उन्हें अपने सौन्दर्य का पान कराती हुई समीप आकर बोली–

श्रीमान! राक्षसों के लिए सुरक्षित इस वन में मनुष्य के वेश में योद्धाओं की भाँति अस्त्र-शस्त्र लिए निर्भय होकर घूमने वाले आप कौन हैं? और यहाँ किस उद्देश्य से आये हैं?

श्री राम ने उत्तर दिया–मेरी बहन! मैं सम्राट् दशरथ का पुत्र रघुवंशी राम हूँ जो अपने अनुज लक्ष्मण एवं पत्नी सीता के साथ अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए यहाँ निवास कर रहा हूँ। अब आप अपना परिचय देने की कृपा करें।

मेरा नाम शूर्पणखा है। मैं राक्षसराज रावण, महाबली कुम्भकरण एवं विभीषण की अनुजा हूँ और खर-दूषण की भी मुँहबोली बहन हूँ। मेरे सभी बन्धु महान् योद्धा हैं और दक्षिणपथ के इस प्रदेश के नायक हैं। यह कहकर वह इच्छित कामना भरी दृष्टि से श्रीराम की ओर देखने लगी। मानो वह उनके द्वारा पहल किए जाने की प्रतीक्षा कर रही थी। श्रीराम अपने स्थान पर निश्चल बैठे रहे। शूर्पणखा बोली--हे सुकुमार! मैं आप की भार्या बनना चाहती हूँ। आइए हम दोनों गंधर्व विवाह कर पति-पत्नी बन जायें।

तब राम ने कहा–हे सुमुखी ! मैं विवाहित हूँ, मेरी पत्नी सीता मेरे साथ है और उसके अतिरिक्त सारी स्त्री जाति मेरी माँ, बहन और

बेटी के समान है। अब वह लक्ष्मण की ओर फिरी क्योंकि वे भी सुदर्शन एवं युवा थे। उसने लक्ष्मण से भी वही बातें दोहरायी। लक्ष्मण ने इस प्रस्ताव का तर्कसंगत उत्तर दिया। मैं तो राम का छोटा भाई और सेवक हूँ। ऐसी अनुचित बातें आप को शोभा नहीं देती। वह पुनः राम के निकट जाकर बोली—इस दुर्बल और शोभा- विहीन अपनी पत्नी को त्याग दो अन्यथा मैं इसका वध कर दूँगी। श्रीराम ने गम्भीर होकर लक्ष्मण से कहा—तात! तुम इस स्त्री को यहाँ से शीघ्र ले जाओ अन्यथा हमको यह हानि पहुँचा सकती है। यह सुनते ही शूर्पणखा व्यग्र हो उठी और उसने राम के पास खड़ी मुस्कराती हुई सीता पर प्रहार कर दिया। स्थिति को बिगड़ते देख श्रीराम ने लक्ष्मण से इसके नाक, कान काट कर सुन्दरता नष्ट करने का आदेश दिया। लक्ष्मण ने आदेश पाकर शूर्पणखा के नाक, कान काट दिये।

अब शूर्पणखा क्रोध से रोती हुई खर से बोली—भाई! रूपवान, शूरवीर और तपस्वी, राजा दशरथ के दो पुत्र इस वन में टिके हुए हैं और उनके साथ एक अत्यंत सुन्दर सीता नाम की स्त्री है। उन्हीं दोनों ने मेरे नाक, कान काट लिये हैं। अब मैं जब तक उनका खून न पी लूँगी तब तक मुझे चैन न आयेगा। यहाँ पहली बार तुमसे काम पड़ा है। बस इसे कर दो। नहीं तो मैं मर जाऊँगी। इतना सुनकर शूर्पणखा के भाई ने क्रोध में आकर अपने सेनापति को बुलाकर कह दिया कि तुम राक्षसों को ले जाओ। इस वन में दो भाई स्त्री सहित ठहरे हैं। उन्हें पकड़ कर शीघ्र ले आओ। जिससे हमारी बहन उनका रक्त पी ले। यह सुनते ही वह सेनापति बहुत से राक्षसों को साथ लेकर और शूर्पणखा को आगे करके श्रीराम को पकड़ने को चला।

काले बादलों की तरह आती हुई राक्षसों की सेना को देख कर श्रीराम ने अपने भाई से कहा कि लक्ष्मण तुम यहीं बैठो और सीता की रक्षा करो। हम अकेले ही इन राक्षसों को, जिन्हें शूर्पणखा बुला कर लाई है, मारेंगे। अब कवच पहनकर, धनुष को टंकारते हुए श्रीराम राक्षसों की ओर चल दिये और बोले—रे राक्षस! हम राजा दशरथ के पुत्र इस वन में आये हैं और तपस्या करते हैं। तुम हम पर क्यों चढ़ आते हो हमने ऋषियों से प्रतिज्ञा कर ली है कि पापी राक्षसों को मार डालेंगे। इसी लिए हम धनुष पर डोर चढ़ाये हुए हैं। जो तुम लोगों को

अपने प्राण प्यारे हों तो यहाँ से भाग जाओ, नहीं तो हमारे सामने खड़े हो जाओ। देखो भागना मत। राक्षस भी निडर थे। वे हँस कर कहने लगे कि अहो! हमारी इतनी भारी सेना से तुम अकेले ही लड़ोगे। अजी लड़ना तो क्या, तुम तो हमारे सामने ठहर भी नहीं सकते। यह कहकर राक्षस लोग अपने-अपने शस्त्र उठाकर श्रीराम पर आक्रमण करने के लिये दौड़े।

अब श्रीराम पर राक्षस तीरों से वर्षा करने लगे और श्रीराम भी अपने पैने-पैने तीरों से उनके तीरों को काटने लगे। थोड़ी ही देर में श्रीराम ने उन सब राक्षसों को मार गिराया। जब सब राक्षस मर गये तक शूर्पणखा रोती हुई दौड़ कर फिर खर के पास गई और चिल्लाकर कहने लगी कि हमारे नाक कान कटे तो कटे, परन्तु तुम्हारे भी सब राक्षस मारे गये। हमको तो अब बड़ा ही डर मालूम होता है। तुम हमारी रक्षा क्यों नही करते? हमारी समझ में तो तुम श्रीराम के सामने खड़े भी नहीं हो सकते। उन्होंने तो अकेले ही सब को मार डाला है।

अरे! उनका छोटा भाई भी बड़ा बलवान् है। जब वे दोनों भाई मिलकर मारना शुरू करेंगे तब न जाने क्या होगा। जो तुम कुछ अपने को शूरवीर समझते हो तो शीघ्र राम को मारो। परन्तु तुमसे भी कुछ नहीं हो सकेगा। शूर्पणखा की बातें सुनकर खर ने कहा कि तुम्हारे ऐसा कहने से हमें बड़ी शर्म आती है, क्रोध भी होता है और हँसी भी आती है। हम तो राम को कुछ भी नहीं समझते। वे तो आज ही हमारे हाथ से मारे जायेंगे। उनको तो तुम मरा ही समझो। हे बहन! हमारे शस्त्रों से कटे हुए राम का गर्म-गर्म लहू आज तुम पीओगी। यह कहकर खर ने अपनी बहुत सी सेना तैयार कराई और उस को साथ लेकर वह श्रीराम की ओर चल पड़ा।

अब राक्षसों की सेना को आते देख कर श्रीराम लक्ष्मण से बोले—भाई, देखो! राक्षसों के आगे कैसे बुरे-बुरे शकुन दिखाई पड़ रहे हैं। यहाँ मेरी दाहिनी भुजा फड़क रही है। मेरी समझ में तो आज बड़ा भारी युद्ध होगा। मेरी विजय होगी और राक्षस मारे जायेंगे। अब तुम सीता को ले जाकर पर्वत की गुफा में जा बैठो। देर न करो।

लक्ष्मण ''बहुत अच्छा'' कह कर सीता को गुफा में ले गये।

इधर श्रीराम अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध को तैयार हो गये। अब श्रीराम ने देखा कि चारों ओर से राक्षस घेरते हुए आ रहे हैं। खर ने अपने रथवान से कहा कि मेरा रथ श्रीराम के सामने ले चलो। अब खर का रथ श्रीराम के सामने ही आ गया। खर ने आते ही श्रीराम पर सैंकड़ों तीर मारे। उसकी सेना इधर-उधर से श्रीराम को घेर कर उन पर तीरों की वर्षा करने लगी। अब श्रीराम राक्षसों के मध्य में घिरे खड़े हैं। तीर शरीर में घुस रहे हैं और रुधिर धारा बह रही है। जब श्रीराम को क्रोध आया तब लगे तीर बरसाने। ऐसा भारी युद्ध हुआ कि राक्षसों के पैर उखड़ गये। परिणाम यह हुआ कि सारे राक्षस मारे गये।

जब शूर्पणखा ने देखा कि अकेले ही श्रीराम ने सारी सेना मार डाली और खर, दूषण दोनों भाई भी मारे गये तब वह रोती बिलखती हुई लंका में अपने भाई रावण के दरबार में गई और बड़ा क्रोध कर रावण से बोली कि हे रावण! बड़ी लज्जा की बात है कि तुम यहाँ बैठे हो। तुम जैसे बेपरवाह राजाओं का राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। देखो तो! मेरा क्या हाल है? इसका तुम्हें कुछ समाचार नहीं। यह सुनकर रावण ने शूर्पणखा से पूछा कि ऐसा कौन है जिसने तुम्हारा यह हाल किया है और सब राक्षस मार डाले हैं? सब देवता लोग तो इकट्ठे होकर नहीं आ गये? शूर्पणखा ने श्रीराम का सब पता बता दिया और कहा कि उनकी लम्बी-लम्बी भुजाएं और बड़ी-बड़ी आँखें हैं। रूप में उनके समान दूसरा नहीं है धनुष उनके पास है। उसी से वे सब को मारते हैं।

अकेले ही श्रीराम ने सब राक्षस मार दिये। किसी को जीता नहीं छोड़ा। बस मुझको स्त्री जान कर छोड़ दिया है। वे अकेले ही नहीं हैं, उनके साथ उनका छोटा भाई लक्ष्मण भी है। वह शूरवीरता में उनके ही समान है और एक सीता नाम की स्त्री भी उनके साथ है, जिसकी बराबरी दुनियाँ भर में कोई नहीं कर सकता। वह तुम्हारे ही योग्य है। मैं सीता को तुम्हारे ही लिए माँगने गई थी कि लक्ष्मण ने हमारे नाक, कान काट दिये। जो तुम अपने रनवास को सजाना चाहो तो सीता को ले आओ। बस सीता के वियोग में दोनों भाई आप ही मर जायेंगे।

शूर्पणखा के नाक, कान कटे देखकर खर, दूषण आदि बड़े-बड़े वीर और राक्षसों का मरना सुनकर रावण को बड़ा ही क्रोध आया। सोच विचार कर वह मारीच राक्षस के पास पहुँच कर बोला—हे मारीच! तुमने सुना ही होगा कि हमारे जनस्थान के सब राक्षसों को दशरथ के पुत्र श्रीराम ने मार डाला और हमारी बहन शूर्पणखा के नाक कान काट लिये हैं। इसका मुझे बहुत ही शोक है। हे मारीच! श्रीराम ने मेरे निरपराध वीरों को मारा है और मेरी बहन के नाक, कान काटे हैं, इसलिए इसके बदले में मैं उनकी स्त्री सीता को हर लेना चाहता हूँ। इसमें तुम सहायता करो तो बड़ा काम हो। अब एक काम करो तुम एक सोने के हिरन का रूप बना लो और सीता के सामने से निकल कर वन में दूर जा चरने लगो। बस, सीता तुमको देखकर श्रीराम से तुम्हें पकड़ने को कहेगी। जब दोनों भाई तुमको पकड़ने के लिए दौड़ेंगे तब पीछे सीता को चुरा कर मैं ले आऊँगा। बस, फिर सीता के वियोग में राम आप ही मर जायेंगे।

इसके पश्चात् रावण ने सीता हरण करने का विचार कर लिया और इसके लिए मारीच से सहायता माँगी। थोड़ी देर में मारीच बड़ी सावधानी से रावण से बोला— हे रावण! वह कौन सा तुम्हारा वैरी है जिसने तुमको सीता के चुरा लाने की सलाह दी है? क्या वह तुम्हारा पुराना शत्रु है जो तुम्हारा नाश चाहता है? अवश्य ही वह तुम्हारा पूरा शत्रु है जो तुम्हारे हाथ से जहरीले साँप के दाँत उखड़वाना चाहता है। हे रावण, तुमको यह किसने सलाह दी है? पुरुषसिंह श्रीराम के छेड़ने को तुम्हें किसने उकसाया है? तुम तो क्या, सारी दुनियाँ के राक्षस भी श्रीराम की बराबरी नहीं कर सकते। हे रावण! राक्षसों के लिए तो श्रीराम काल रूप हैं। जो तुम अपना भला चाहते हो तो चुपके से लंका को लौट जाओ। सीता को चुराने का नाम न लो। हे रावण! कहीं तुम्हारे नाश के लिए ही तो सीता का जन्म नहीं हुआ। अरे! तुमसे तो श्रीराम के पैने तीर सहारे भी नहीं जायेंगे। याद रखो! जो तुम सीता को चुरा कर लाये हो तो जिस समय श्रीराम के सामने आओगे तो जीते न बचोगे।

इस प्रकार मारीच ने रावण को बहुत समझाया। परन्तु उस मूर्ख की समझ में कुछ न आया। यहाँ तक कि रावण मारीच के समझाने से रुष्ठ हो गया। तब मारीच ने विचारा कि जो मैं रावण का कहा न मानूँगा तो वह दुष्ट मुझे मार डालेगा। यह विचार कर मारीच ने रावण से कहा कि अच्छा चलो, जो तुम्हारी इच्छा। हम तो मारे ही जायेंगे परन्तु याद रखो! तुम भी न बच सकोगे और सारी लंका नष्ट हो जायेगी।

लाचार हो, मारीच रावण के साथ श्रीराम के आश्रम की ओर चला। वहाँ पहुँचकर वह बड़ा सुन्दर हिरन बन गया और श्रीराम की कुटी के पास घूमने लगा। इस समय मारीच ऐसा मनोहर मृग बना हुआ था कि उसको देख कर सब का जी ललचाता था। वह बड़ी सुघड़ाई से धीरे-धीरे उछलता कूदता-फिरता था। उसका मटक-मटक कर हरी-हरी घास चरना देखने वालों का मन हर लेता था। यहाँ तक कि वह सीता के पास पहुँच गया। अब कभी इधर उधर कूदता था। वह चाहता था कि किसी तरह मुझ पर सीता की नज़र पड़े। जब सीता ने उसे देख लिया तब वह हिरन और भी ज़ोर से वन में कूदने फाँदने लगा। उसको देखकर सीता का मन ललचा गया। तब वे श्रीराम से बोली—इस हिरन को लाकर पकड़कर मुझे दो।

सीता ने कहा, ''यदि यह मृग मेरे पास हो तो मैं इसके साथ प्रसन्नतापूर्वक समय व्यतीत कर सकती हूँ। जब आप दोनों अपने-अपने कार्य में संलग्न रहेंगे तो मैं इस विलक्षण पशु के साथ क्रीड़ा कर प्रसन्न रहूँगी। इस चमकीले मृग को मेरे लिए ले आओ। क्या आप मेरी यह लघु इच्छा भी पूर्ण नहीं कर सकते जिससे जब मैं अकेली होऊँ तो इसे लाड़-प्यार करूँ तथा इसकी क्रीड़ा देखूँ?'' सीता ने रहस्यात्मक मृग के प्रति महान् आसक्ति प्रदर्शित कर इस प्रकार प्रार्थना की।

यह देखकर लक्ष्मण अपने स्थान से खड़े हुए और बोले, ''माता! मैं आपके लिए यह अवश्य लाऊँगा।'' राम ने उन्हें रोक दिया। उन्हें ज्ञात था कि वह केवल उनके हाथों ही वश में आएगा। यह तो उनके

द्वारा अभिनीत नाटक की प्रस्तावना थी, किन्तु लक्ष्मण इस नाटक से अनभिज्ञ थे । उन्होंने कहा, ''लक्ष्मण ! इस पर कोई घाव या चोट किए बिना ही इसे पकड़ना है । अतः मुझे ही सीता की यह इच्छा पूर्ण करनी होगी । उनके इस आदेश पर लक्ष्मण मौन हो गये ।

सीता और राम दोनों को ही नाटक के क्रमिक दृश्यों का ज्ञान था । अतः राम ने स्वयं ही जाने का निश्चय कर लक्ष्मण से कहा, ''लक्ष्मण ! यह जंगल राक्षसों का निवास स्थान है । याद करो जब दो दिन पूर्व खर और दूषण ने हम पर आक्रमण किया था तो क्या हुआ था । उनके संबंधी और मित्र सम्पूर्ण बल सहित हम पर आक्रमण कर सकते हैं । अतः सदैव धनुष पर बाण चढ़ाये रखो और चहुँ दिशाओं में अति सावधानीपूर्वक ध्यान रखो । सतर्कता से सीता की सुरक्षा करो । किसी भी परिस्थिति में सीता को अकेला मत छोड़ो । कहीं यह मृग मुझसे बचकर दूर न भाग जाये । मुझे इसे जीवित ही पकड़ना है । यह कार्य पूर्ण करने में मुझे कुछ समय लग सकता है । अतः मेरी अनुपस्थिति में अवसर के अनुरूप अपनी बुद्धि और शारीरिक पौरुष का प्रयोग कर सीता की आपत्ति से रक्षा करना ।''

विवश श्रीराम, लक्ष्मण को सब समझा कर हिरन को पकड़ने के लिए चल दिये । अब मरने के डर से वह मारीच कभी तो दिखने लगता कभी छिप जाता था । कभी दूर निकल जाता था और कभी पास आ जाता था । श्रीराम उसके पीछे-पीछे फिरते थे । जब दूर चले गये तब वह सोने का हिरन साधारण हिरन का रूप बना कर फिरने लगा । निशाना लगा कर श्रीराम ने एक बाण ऐसा मारा कि उसको पार हो गया । तीर लगते ही मारीच उछल कर पृथ्वी पर गिर पड़ा और मरने से पहले उसने श्रीराम की वाणी में ''हा सीता ! हा लक्ष्मण !'' बड़े जोर से पुकारा । उस समय श्रीराम जी ने सोचा कि इस छलिया की आवाज़ को सुनकर सीता की बड़ी बुरी दशा होगी । लक्ष्मण भी संदेह में तो पड़ ही जायेंगे, परन्तु सीता बहुत घबरायेगी । यह विचार करते करते श्रीराम अपनी कुटी की ओर चल दिये ।

उस मारीच ने मरते समय, श्रीराम जी की आवाज़ में जो ''हा सीता ! हा लक्ष्मण'' कहा था, उसको सुनकर सीता के मन में बड़ी

चिन्ता हुई । उन्होंने समझा कि श्रीराम राक्षसों के फंदे में फंस गये हैं । इसलिए संकट पड़ने पर हमको याद किया है । इस तरह सीता के मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे । वे लक्ष्मण से बोली– हे लक्ष्मण ! जाकर देखो तो तुम्हारे भाई कैसे हैं । इस समय मेरा कलेजा धड़क रहा है । क्योंकि ये दुःख के वचन तुम्हारे भाई के मुख से निकले हैं । तुम उनकी रक्षा के लिए उनके पास जाओ । लक्ष्मण ने कहा कि श्रीरामजी ने मुझे आज्ञा नहीं दी कि मैं तुमको अकेला नहीं छोड़ू । इसलिए मैं नहीं जा सकता । यह सुनकर सीताजी को बड़ा क्रोध आया ।

वह बोली– हे लक्ष्मण ! बड़े शोक की बात है कि तुम अपने भाई के प्यारे बन कर भी विपत्ति में उनकी सहायता नहीं करते । तुम उनके भाई नहीं, घातक हो जो ऐसे समय में भी उनके पास नहीं जाते । क्या तुम यह चाहते हो कि राम मारे जायें और सीता को तुम अपने वश में कर लो । अवश्य तुम्हारे मन में पाप बसा हुआ है । मेरे ही लालच से तुम उसके पास नहीं जाते । अरे ! तुमको श्रीराम से कुछ भी प्रेम नहीं । हाय ! अब हम अकेली क्या करें ? इस प्रकार कहती-कहती सीता रोने लगी । उस समय लक्ष्मण ने सीता को बहुत समझाया और कहा कि हे सीते ! राक्षस की तो क्या, किसी देवता की भी यह शक्ति नहीं कि श्रीराम को दुःख दे सके, मारना तो अलग रहा । इस कारण तुमको अपने मुँह से ऐसे वचन नहीं कहने चाहिए ।

अतः लक्ष्मण ने सीता से कहा–माता ! राम पर कोई विपत्ति नहीं आ सकती । चाहे कोई राक्षस कितना भी धूर्त हो किन्तु वह राम को क्षति नहीं पहुँचा सकता । क्या आपने नहीं देखा कि उन्होंने हज़ारों राक्षसों को कैसे नाश किया था । आप व्याकुल मत हो । साहस रखें और शांत रहें । श्रीराम शीघ्र ही सकुशल इस आश्रम में वापिस आ जायेंगे । मैं किसी भी प्रकार तुम्हें अकेली नहीं छोड़ सकता । तुम शोक को दूर कर धीरज से बैठी रहो । अभी राक्षस को मार कर श्रीराम आते होंगे । यह आवाज़ उनकी नहीं वरन् राक्षस की है । इसलिए तुम घबराओ मत । देखो ! जब से खर मारा गया है तब से राक्षसों का और हमारा पूरा वैर हो गया है, इसलिए हम तुम्हें अकेली कैसे छोड़ दें ?

यह सुनकर सीता क्रोध में लाल आँखें करके बोलीं– अरे नीच !

तुम राक्षसों की रक्षा चाहते हो। बड़े निर्लज्ज हो। राम को दुःखी देख कर तुमको कुछ भी तरस नहीं आता। लक्ष्मण, हमने तुमको अब जाना। तुम्हारे कुटिल स्वभाव को हमने अब पहचाना। तुम्हारा तो बड़ा खोटा स्वभाव है। तुम अवश्य कैकेयी से सलाह करके आये हो। परन्तु तुम्हारी इच्छा पूरी न होगी। मैं तो अपने स्वामी के अतिरिक्त किसी पुरुष को स्वप्न में भी नहीं चाहती। तुम्हारे देखते ही देखते मैं अपने प्राण छोड़ दूँगी। हे लक्ष्मण! मैं बिना श्रीराम के इस गोदावरी में डूब जाऊँगी। परन्तु उनको छोड़ किसी दूसरे पुरुष को नहीं छुऊंगी। तब लक्ष्मण ने हाथ जोड़ कर कहा कि आप हमारी माता है, इसलिए मैं उत्तर नहीं दे सकता। तुम्हारा ऐसा कहना कुछ नई बात नहीं है। क्योंकि हो तो स्त्री ही। स्त्रियों के स्वभाव ही ऐसे होते हैं कि वे बिना विचारे जो मन में आता है कह बैठती हैं। तुम्हारे कठोर वचन हमारे हृदय में तीर से लगते हैं। खैर, हमारी इच्छा तो यही है कि तुमको अकेली छोड़ कर कहीं न जाऊँ। परन्तु अब हमसे तुम्हारे वचन नहीं सहे जाते। हम तो श्रीराम के पास जाते हैं। परन्तु तुम्हारा कल्याण हो।

लक्ष्मण ने सीता को बहुत कुछ समझाया, परन्तु उन्होंने एक भी न मानी। लाचार लक्ष्मण को भी क्रोध आ गया। वे श्रीराम की खोज में चल दिये। उधर रावण तो ताक में लगा हुआ ही था। बस, सीता को कुटी में अकेली देख संन्यासी साधु का वेश बनाकर वह उनके पास आया और बड़ाई करके कहने लगा कि हे देवी! तुम कौन हो? यहाँ किसलिए आई हो? वह पुरुष बड़ा भाग्यवान् है जिसको तुम मिली हो। तुम किस की स्त्री हो? तुम यहाँ रहने योग्य नहीं। सीता ने साधु समझ कर उसके बैठने को आसन दिया और फल मूल खाने को दिये। फिर उन्होंने अपना सब व्यौरेवार पता बता दिया। रावण ने सोचा कि अब देर न करनी चाहिए। राम लक्ष्मण के आने से पहले ही सीता को ले चलना चाहिए। यह विचार कर वह बोला—तुम्हारा तो सब पता हमने जान लिया, अब हमारा हाल सुनो। देखो! जिसके डर से देवता, असुर और मनुष्य सदा काँपते रहते हैं हम वही राक्षसराज रावण हैं।

अब हम तुमको लंका में ले जायेंगे और अपनी पटरानी बनायेंगे। वहाँ तुम सुख से रहना और अच्छे-अच्छे गहने, कपड़े पहनना।

अब तो इतना सुनते ही सीता की देह में आग लग गई। वे बड़े क्रोध में होकर बोली—रे नीच! मैं श्रीराम की पतिव्रता स्त्री हूँ। भला सिंह की स्त्री को तुम गीदड़ कैसे ले जाओगे क्या तुम्हारा काल निकट आ पहुँचा? अरे! जैसे सूर्य की प्रभा को कोई नहीं छू सकता वैसे ही तुम भी हमको नहीं छू सकते। अरे! तुम सिंह के मुँह से मृग और विषधर सर्प के मुँह से दाँत निकालने की इच्छा करते हो। तुम पहाड़ को फूंक से उड़ाना चाहते हो। अरे! तुम तो सुई से आँख खुजाते हो, जो हमें कुदृष्टि से देखते हो। अरे! तुम तो गले में पत्थर बाँध कर समुद्र पार करना चाहते हो। जितना भेद सिंह और गीदड़ में समुद्र और पोखर में, सोने और लोहे में, चन्दन और धतूरे में, हंस और गिद्ध में और अमृत और विष में है इतना ही श्रीराम में और तुम में है। अरे मूर्ख! जब तक श्रीराम धनुषबाण लिये पृथ्वी पर हैं तब तक मुझे कोई नहीं ले जा सकता। इतना कह कर सीता डर के मारे काँपने लगी।

सीता के ऐसे वचन सुनकर रावण को भी बड़ा क्रोध आया। वह बोला— हे सीते! हम कुबेर के सौतेले भाई हैं। रावण हमारा नाम है। हमारे भाई और बेटे बड़े बलवान् हैं। हमारे बल का तो कुछ ठिकाना ही नहीं। औरों की तो क्या गिनती देवता भी मेरे डर से काँपते हैं। जब मैंने युद्ध में खड़े होकर अपने भाई कुबेर को भी जीत लिया और उसको लंका से निकाल दिया और उसका पुष्पक विमान भी छीन लिया तब औरों की क्या गिनती। जब कभी हम क्रोध करते हैं तो इन्द्र भी सामने नहीं आता। जहाँ मैं बैठता हूँ वहाँ पवन भी डर कर मंद-मंद चलती है। हमारी लंकापुरी इन्द्रपुरी से भी बड़ी है। वहाँ सोने के महल और समुद्र की खाई है। जब तुम हमारे साथ मेरे पुष्पक विमान सें विचरोगी तब तुम राम को बिल्कुल भूल जाओगी। अब तुम मुझको पति बनाओ और ना मत करो। राम तो हमारी एक उँगली के बराबर भी नहीं है।

यह सुन कर सीता ने कहा—बड़े शोक की बात है कि कुबेर के

भाई होकर तुम पराई स्त्री पर मन चलाते हो। जो तुम ऐसा चाहते हो तो सब राक्षसों का नाश हो जाएगा और तुम्हारी लंकापुरी भी उजड़ जायेगी। अरे मूर्ख! इन्द्र की स्त्री इन्द्राणी को चुराने वाला चाहे बच जाए, पर श्रीराम की स्त्री को चुराने वाला नहीं बच सकता। श्रीराम की स्त्री को जबरदस्ती से चुराने वाला तो अमृत पीकर भी जिन्दा नहीं रह सकता। इतना सुनकर रावण क्रोध में भर और अपना शरीर बढ़ा कर बोला—हे जानकी! देखो, हमारा कितना बड़ा डौल-डौल है। देखो! मैं आकाश में खड़े हो सारी पृथ्वी को उठा सकता और समुद्र पार कर सकता हूँ। हम अपने बाणों से सूर्य के टुकड़े-टुकड़े कर सकते हैं। हे सीते! जो तुम सारे संसार में उत्तम पति चाहती हो तो मेरे साथ चल कर लंका में बसो। रावण की यह दशा देख सीता मूर्च्छित हो गई और रावण ने बायें हाथ से सिर और दाहिने हाथ से पैर पकड़ सीता को रथ में डाल दिया। जब सीता की मूर्च्छा जागी तब ''हा राम! हा राम!'' कह कर रोने लगीं। रावण ने रथ भगा दिया। फिर सीता विलाप करने लगीं।

अब प्रश्न पैदा होता है कि सीता-हरण के मुख्य कारण क्या थे? सीता हरण के मुख्य कारण निम्नलिखित थे—

(1) दशरथ के साथ रावण की स्थायी शत्रुता थी। उसने अनुभव किया था कि दशरथ के पिता अज के कारण ही उसके पिता विश्रवा को विशाल कौशल साम्राज्य से वंचित होना पड़ा अन्यथा आज वह उसका स्वामी होता।

(2) दशरथ ने अनेक बार असुरों के विरुद्ध युद्ध में इन्द्र की सहायता की जिसके कारण उसे उतनी ही वार पराजय का मुख देखना पड़ा था।

(3) उसके सौतेले भाई कुबेर के प्रति प्रतिशोध की भावना।

(4) वेदवती द्वारा उसका अपमान, अभिशाप फिर आत्म हत्या।

(5) कुबेर के पुत्र नलकुबेर तथा उसकी पत्नी रम्भा द्वारा उसका अपमान।

(6) अंततः परमप्रिय बहिन शूर्पणखा का अपमान

—सत्य नारायण पृ० 303

इस प्रकार विलाप करती हुई सीता को जब रावण रथ में ले जा रहा था तब इनके रोने की आवाज़ जटायु के कानों में पड़ी। वह जटायु श्रीराम की कुटी के पास ही रहता था और श्रीराम का बड़ा भक्त था। जब उसने देखा कि सीता को रावण जबरदस्ती लिये जा रहा है तब उससे यह दुःख देखा न गया। झटपट रावण के रथ के आगे आकर उसने रथ रोक लिया और क्रोध में भर कर रावण को ललकार कर बोला— अरे दुष्ट रावण! सीता को कहाँ लिये जाता है? ये तो सिंह की स्त्री है, गीदड़ इनको नहीं ले जा सकता। अरे! तू तो अपने को बड़ा वीर कहा करता था। यह कायरों का काम क्यों करता है? हम तो तेरी बहादुरी तब जानते जब राम लक्ष्मण के होते हुए उनके सामने से, सीता को ले जाता। अरे! जो बल का अभिमान रखता है तो आ, दो घड़ी हमसे युद्ध तो कर। याद रखना! जब तक हमारे शरीर में प्राण रहेंगे तब तक मैं सीता को न ले जाने दूँगा।

इतना सुनकर रावण शस्त्र लेकर जटायु के मारने को दौड़ा। परन्तु जटायु भी बड़ा बलवान था। उसने भी अपने बल और साहस से रावण को घायल और विफल कर दिया। वह तलवार लेकर जटायु पर टूट पड़ा। जब रावण ने तलवार से जटायु के अंग काट दिये तब लाचार हो वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और रावण सीता को बगल में दबा कर आकाश में उड़ता हुआ लंका को चल दिया। सीता ने रावण से कहा—अरे नीच! तुझे शर्म नहीं आती। मुझे चोर की नाई चुराये लिये जाता है। मैं तो तेरा बल तब जानती जब श्रीराम के सामने से मुझको ले जाता। अरे दुष्ट! अभी कुछ नहीं बिगड़ा, तू अब भी मुझको छोड़ दे, नहीं तो जब मेरे स्वामी और शूरवीर देवर लक्ष्मण सुनेंगे तब तुझे तेरे कुटुम्ब समेत मार कर मुझको अवश्य ले जायेंगे।

इस प्रकार क्रोध से भरे भाँति-भाँति के वचनों से रावण को समझाती और विलाप करती हुई सीता को जब रावण लंका को ले जा रहा था, तब एक पहाड़ पर बैठे हुए चार पांच वानरों को सीता ने देखा। सीता ने इस विचार से कि कभी हमारे स्वामी यहाँ हमें

ढूंढते-ढूंढते आ निकलेंगे तो उनको हमारा कुछ पता मिल जायेगा, झट अपने कुछ गहने एक कपड़े में बाँध कर उन वानरों के पास नीचे डाल दिये। अब रावण लंका में पहुँचा। उसने सीता को अपने वश में करने को बहुत कुछ चाहा परन्तु सीता धर्मात्मा थीं, वे अपने धर्म में पक्की थीं, वे रावण के बहकाने में कब आ सकती थीं।

एक दिन रावण सीता के पास आकर बहुत कुछ लोभ और भय दिखाने लगा। उसने कहा कि हे जानकी! तुम अब मुझसे लज्जा क्यों करती हो? मैं तुम्हारे पाँवों पर अपना शीश नवाता हूँ। मुझ पर प्रसन्न हो। मैं तुम्हारा सेवक और दास हूँ। अब तुम राम को भूल जाओ। अब तो हमारी लंका में आ गई है। भला राम की क्या शक्ति जो यहाँ तक आ सके। तुम्हारे वियोग से वह तो मर ही गया होगा। तू अपना बड़ा भाग्य समझो जो मैं तुम्हारी इतनी चापलूसी कर रहा हूँ। देखो! ये सैकड़ों दासियाँ तुम्हारी टहल करने को मौजूद हैं। जैसा तुम गहना कपड़ा चाहो बनवा सकती हो। अब तुम शर्म को छोड़ो। अब तो हम ही को सब कुछ समझो। देखो! मेरे यहाँ पुष्पक नाम का एक विमान है। जब तुम कहीं की सैर करना चाहो, उस पर चढ़कर कर लिया करो। अब तू मेरी ओर देखो। मेरी बड़ी इच्छा है कि तू मुझे अपना पति बनाओ।

इतनी बात सुनकर सीता तिनके को आड़ में खड़ा कर, निर्भय होकर रावण से बोली—हे रावण! महात्मा पुलस्थ के कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम क्यों अपने कुल को दाग़ लगाते हो। देखो! मेरे पति रघुकुल के कुलदीपक हैं। वे बड़े धर्मात्मा और शूरवीर हैं। जब वे मेरा पता पा लेंगे तब झट यहाँ से हमको ले जायेंगे। यह मुझे पूरी आशा है। याद रखना! वे तुमको बिना मारे नहीं छोड़ेंगे। अरे नीच! अब मैंने जान लिया है कि तेरी मृत्यु निश्चित् है।

इस प्रकार जब-जब रावण सीता के पतिव्रत धर्म को बिगाड़ने की इच्छा से उनसे बातचीत करता और उसको तरह-तरह के लोभ देता था, तब-तब सीता भी उसको बड़े निडर होकर झिड़क देती थी और क्रोध में आकर कह दिया करती थी कि हम श्रीराम की पतिव्रता स्त्री हैं। जैसे वेदपाठी ब्राह्मणों के यज्ञ की अग्नि को चण्डाल नहीं छू

सकता, जैसे शेर के शिकार को गीदड़ नहीं छीन सकता, जैसे पापी पुरुष स्वर्ग के सुखों को नहीं भोग सकता और जैसे हंस की बराबरी कौआ नहीं कर सकता वैसे ही तुम भी हम को नहीं पा सकते।

जब रावण ने देखा कि यह मेरा कहना नहीं मानती तब उसने अपनी दासी राक्षसियों से कह दिया कि तुम सीता को अशोक वाटिका में रक्खो और समझा दो। साथ ही सीता से भी कह देना कि जो तुम आज से एक वर्ष के भीतर मेरा कहना नहीं मानी तो तुम्हारी बोटी-बोटी कटवा दी जायेगी और तुमको मैं खा जाऊँगा। अब बहुत सी राक्षसियाँ सीता को अशोक वाटिका में ले गईं। वहाँ उन्होंने उसको तरह-तरह के डर दिखाये और अनेक प्रकार के लोभ दिये। परन्तु सीता तो सच्ची पतिव्रता थी। उन्होंने सोच लिया था कि चाहे प्राण चले जाएं परन्तु धर्म को नहीं बिगाड़ूँगी। इस प्रकार श्रीराम के वियोग में दुःखी होकर उनको याद करती हुई सीता अशोक वाटिका में रहने लगी।

अब श्रीराम सोने के हिरन का रूप बनाने वाले उस कपटी मारीच राक्षस को मार कर अपनी कुटी को आ रहे थे तब लक्ष्मण को आते देख कर मन में तरह-तरह के सन्देह करने लगे। लक्ष्मण हाथ जोड़ कर बोले—नाथ, मेरा कुछ अपराध नहीं। मैंने तो उनको बहुत समझाया कि यह आवाज़ किसी राक्षस की है, श्रीराम की नहीं परन्तु उन्होंने मेरी एक न सुनी। जब वे मुझको अपशब्द कहने लगी तब लाचार होकर मैं वहाँ से आपके पास आया हूँ। मैं तो जानता ही था—मुझे तो पूरा भरोसा था कि हमारे शूरवीर भाई को कोई भी राक्षस दुःख नहीं पहुँचा सकता।

अब दोनों भाई सीता की कुशल मनाते हुए उनकी प्रसन्नता से कुटी में देखने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हुए त्वरित गति से कुटी को चल दिये। जब वे कुटी में पहुँचे और सीता को अपने स्थान पर न देखा तब दोनों भाइयों के मन का सन्देह और भी पक्का हो गया। अब तो इनके होश उड़ गये। जिस श्रीराम का चेहरा अयोध्या के राजतिलक मिलने का समाचार पाकर खुश नहीं हुआ और बनवास की आज्ञा मिलने पर दुःखी नहीं हुआ उन्हीं श्रीराम का चेहरा आज सीता

को कुटी में न पाकर उतर गया। लक्ष्मण के भी शोक का ठिकाना न था। सीता को याद करके दोनों भाई तरह-तरह से विलाप करने लगे। श्रीराम बार-बार ''हा सीते! हा सीते!'' कह कर चारों ओर देखने लगे।

इस प्रकार जब दोनों भाई सीता को ढूँढ़ते फिरते थे तब आगे चल कर देखा तो एक जीव पड़ा सिसक रहा है। तब उनके कहने लगा कि रावण ने सीता का हरण किया है। इतना कह कर जटायु ने श्रीराम के दर्शन करके प्राण त्याग दिये। श्रीराम सीता को खोजने शबरी के आश्रम की ओर चल दिये। वैसे तो शबरी जाति की भीलनी थी परन्तु वह प्रभु की भक्ति करती थी। जब उसने श्रीराम को आते देखा तब झटपट दौड़ कर उनके चरणों में गिर कर उनकी बहुत कुछ सेवा की। श्रीराम शबरी की सेवा से बड़े प्रसन्न हुए। श्रीराम ने श्रद्धापूर्वक फल ग्रहण करते हुए कहा–

माता! ये फल वैसे ही मधुर हैं जैसा तुम्हारा हृदय है। वस्तुतः फल वृक्ष में उगने वाले नहीं है। वन में लगने वाले जंगली फल इतने मधुर नहीं होते? वह कदापि नहीं हो सकते। यह फल तो जीवन रूपी पवित्र वृक्ष की शुद्ध चित्तरूपी शाखाओं पर प्रेम रूपी सूर्य प्रकाश से पके हैं। शबरी ने श्रीराम के समक्ष करबद्ध होकर कहा–

प्रभु! मैं निम्न जाति की हूँ। मेरी बुद्धि अशिक्षित मंद और मूढ़ है। मैं किसी पवित्र कला या ग्रंथ की विदुषी नहीं हूँ।

इसका उत्तर देते हुए श्रीराम ने कहा–

माँ! मुझे केवल भक्ति की आवश्यकता है। शेष तो उसके सहचर हैं। अन्य वस्तुयें जैसे पाण्डित्य, विद्वता, पद, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा जाति पर मैं ध्यान नहीं देता। मेरी दृष्टि में वे मूल्यहीन हैं।

शबरी हाथ जोड़ कर श्रीराम की बड़ाई करने लगी। अब श्रीराम उस शबरी को भक्ति का उपदेश देकर आगे को चल दिये।

यह काण्ड ''रामचरितमानस'' का सर्वश्रेष्ठ काण्ड है क्योंकि इसमें श्रीराम ने लक्ष्मण को दिया गया ज्ञानोपदेश और शबरी को भक्ति का उपदेश दिया है। इसके अतिरिक्त इसमें श्रीराम ने कुशलता एवं

दूरदर्शिता का परिचय दिया क्योंकि उन्होंने समूचे राष्ट्र को जोड़ने का महान् कार्य किया। इस काण्ड में रावण ने सीता हरण किया और श्रीराम ने इस चुनौती को स्वीकार किया तथा स्थान-स्थान पर स्वयं जाकर राष्ट्र पर आई विपत्ति से लड़ने के लिये लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का संचार करके उन्हें तैयार किया। अतः इसी कारण रामचरितमानस में अरण्यकाण्ड का वही स्थान है जो महाभारत में गीता का और भागवत पुराण में 11वें स्कन्द का है।

(4) किष्किंधाकाण्ड

अब श्रीराम, लक्ष्मण दोनों भाई सीता को ढूँढ़ते हुए ऋष्यमूक पर्वत के पास पहुँचे। उस पर्वत पर वानरों का राजा सुग्रीव अपने मंत्री हनुमान सहित रहते थे। किष्किंधापुरी इनके रहने की जगह थी। सुग्रीव का बड़ा भाई बाली बड़ा शूरवीर था। परन्तु सुग्रीव धर्मात्मा और बाली पापी था। इसी कारण इन दोनों में अनबन हो गई। दोनों में कई बार घोर युद्ध भी हुआ। अंत में सुग्रीव की हार हुई। बाली ने सुग्रीव की स्त्री रूमा को छीन लिया और उसे भी किष्किंधापुरी से निकाल दिया। सुग्रीव बाली के डर से उस पर्वत पर आ छिपा था। किसी भी साथी ने सुग्रीव का साथ न दिया। परन्तु हनुमान मंत्री ने विपत्ति में भी उसका साथ न छोड़ा।

जब सुग्रीव ने इन दोनों भाइयों को आते देखा तब वह मन में बहुत डरा और सोचने लगा कि कहीं इनको बाली ने तो मुझे मारने को भेजा हो। सुग्रीव ने इनकी परीक्षा लेने के लिए हनुमान को भेजा। हनुमान बड़े बुद्धिमान और बलवान् थे। अपने राजा की आज्ञा पाते ही वह ब्राह्मण का रूप बना और श्रीराम के पास पहुँचे और उनका परिचय प्राप्त किया। अब श्रीराम का परिचय हनुमान को मालूम हो गया तब इन्होंने भी उनसे अपना सब हाल कह सुनाया। हनुमान ने श्रीराम से कहा ''महाराज आप सुग्रीव से मित्रता कर लीजिए तो वह

सीता को ढूँढने के लिए बहुत से वानर इधर-उधर भेज देंगे। इस प्रकार बहुत ही शीघ्र सीता का पता लग जायेगा। आप बाली को मार कर सुग्रीव की स्त्री उसको दिला दीजिए। इस तरह दोनों का काम हो जाएगा। हनुमान के ऐसे बुद्धिमानी वचन सुनकर श्रीराम के भी जी में आ गया कि इस समय सुग्रीव से अवश्य मित्रता कर लेनी चाहिए।''

हनुमान दोनों भाइयों को सुग्रीव के पास ले गये और दोनों की मित्रता करा दी। श्रीराम ने यह प्रतिज्ञा कर ली–

मैं बाली को मार कर सुग्रीव को उसकी स्त्री और किष्किंधा का राज दिला दूँगा।

सुग्रीव ने भी प्रतिज्ञा कर ली–

मैं अपनी सेना को चारों ओर भेज कर सीताजी का समाचार मँगवा दूँगा।

इस प्रकार जब दोनों की प्रतिज्ञा हो गई। तब सुग्रीव को कुछ सन्देह हुआ कि ये दोनों भाई तो देखने में बहुत ही छोटे हैं और बाली महाबली है। उसको ये कैसे मारेंगे? यह विचार कर सुग्रीव श्रीराम से बोला कि महाराज! जब तक आपका बल-पौरुष में अपनी आँखों से न देख लूँ तब तक मुझे कैसे विश्वास हो कि आप बाली को मार सकेंगे। क्योंकि मैं बाली के बल को अच्छी प्रकार जानता हूँ। वह बड़ा बली है। श्रीराम ने कहा कि जिस तरह तुमको विश्वास हो वैसा करो। तब सुग्रीव ने श्रीराम को साल के सात वृक्ष दिखलाये। वे वृक्ष चक्करदार गोल बांधे पृथ्वी पर खड़े थे। सुग्रीव ने कहा कि यदि आप इन वृक्षों को अपने बाण से बींध दें तो मुझे विश्वास हो जाएगा कि आप बाली को मार सकेंगे। श्रीराम ने एक ही बाण से साल के उन सात वृक्षों को एक बार में ही बींध दिया। जब श्रीराम का बाण उन सालों के वृक्षों को पार कर फिर उनके तरकस में आ गया तब सुग्रीव को बड़ा आनन्द हुआ और बाली के मारने का पक्का भरोसा हो गया। इस प्रकार वे दोनों परस्पर मैत्री के बंधन में बंध गये।

लक्ष्मण ने उन्हें सीता तथा उनके दिव्यत्व के विषय में भी

बताया। उन्होंने कहा कि सीता मिथिला राजा की पुत्री है। अतः अनवरत मन्थन या साधना द्वारा ही उन्हें तथा उनके आशीर्वाद को प्राप्त किया जा सकता है। उनकी बात सुनकर सुग्रीव ने पश्चाताप के अश्रु बहाये। उसने कहा, स्वामी! एक दिन जब मैं व्यस्त था तो मैंने राम! राम! की पुकार सुनी जोकि आकाश में उड़ रहे पुष्पक रथ से आ रही थी। जब हम यह अद्‌भुत दृश्य देख रहे थे तभी सीता ने ऊपर से एक कपड़े की गठरी हमारे पास फेंकी। यह रत्न आभूषणों की गठरी थी इसलिए हमने इसे सुरक्षित रख लिया। सम्भवतः रावण राक्षस ही उनका हरण कर ले गया है क्योंकि रावण ने अभी तक कोई अन्याय नहीं छोड़ा है। सुग्रीव उस राक्षस द्वारा किए गए ऐसे दुष्ट कार्य पर दांत पीसने लगे। राम ने आभूषणों की गठरी मंगाई।

इस पर सुग्रीव उठकर उस गुफा की ओर चल दिये जहाँ वह रखी थी। उन्होंने गठरी लाकर राम के समक्ष रख दी। जिस कपड़े में आभूषण बंधे थे वह वही कपड़ा था जिसे कैकेयी ने सीता को संन्यासी वेश धारण करने के लिए दिया था। उसे पहिचानने पर लक्ष्मण के अश्रु फूट पड़े। उनको दुःखी देखकर सुग्रीव और हनुमान भी उदास हो गये। राम ने गठरी की गांठ खोली। उन्होंने सभी आभूषण लक्ष्मण को भी दिखाये जिससे यह निश्चित् हो जाये कि वह सीता के ही थे। लक्ष्मण ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वह उन आभूषणों को नहीं पहचान सकते थे क्योंकि उन्होंने कभी नेत्र उठा कर सीता को नहीं देखा था।

मैंने तो केवल भाभी के बिछुवे ही देखे हैं क्योंकि मैं प्रतिदिन उनको साष्टांगप्रणाम करता था। मैं निश्चित् रूप से कह सकता हूँ कि वे उनके ही बिछुवे हैं। जंगलों में घूमते समय मैं उनका तथा उनके चरण-चिह्नों का अनुगमन करता था। आपको ज्ञात है कि आप सदैव उनके आगे और मैं पीछे चलता था। मैं उनके चरणों पर दृष्टि रखकर ही चल रहा था इसलिए मुझे मालूम है कि वह उनके ही बिछुवे हैं। जब दोनों भाई आभूषण देखकर दुःखी हुए तो सुग्रीव और हनुमान अति चिन्तामग्न हो उन्हें देखने लगे। सुग्रीव और अधिक सहन न कर सके

और बोले–

स्वामी ! दुःखी मत हो । आज से ही मैं सीता को खोजने का प्रयत्न करूँगा और उस दुष्ट रावण का नाश कर सीता को वापिस ला आप दोनों को प्रसन्न करूँगा । यह मेरा वचन और पुण्य प्रतिज्ञा है ।

अब श्रीराम के कहने से सुग्रीव बाली से लड़ने के लिए किष्किंधापुरी को गया और बाली के दरवाजे पर जाकर बड़े जोर-जोर से गर्जने लगा । जब इसके गर्जने की आवाज़ बाली के कानों में पड़ी तब उसको बड़ा क्रोध आया । वह मन में कहने लगा कि यह तो बहुत जिद्द करता है । कई बार मैंने इसे युद्ध में हराया है । तो भी इसको बिना लड़े चैन नहीं पड़ता । अब की बार मैं आगे के लिए कुछ झगड़ा शेष नहीं छोडूंगा और इसको मार दूँगा । यह सोच कर बाली अपनी गदा उठा कर कूदता हुआ सुग्रीव के पास आया और बड़े जोर से बोला कि अब की बार सावधान होकर लड़ना ! देखो ! अब तुमको मैं जीता नहीं छोडूंगा । इस प्रकार कहते सुनते दोनों युद्ध के मैदान में पहुँच गये और युद्ध होने लगा ।

उसने वहाँ केवल सुग्रीव को ही देखा । अतः वह उस पर कूद पड़ा और दोनों में घूंसों के परस्पर प्रहार से युद्ध आरम्भ कर दिया । सुग्रीव प्रचंड प्रहारों की बौछारों को सहन न कर सका । उसने भाग जाना चाहा । बाली ने उसे मार पीट कर इतनी कष्टदायक पीड़ा पहुँचाई कि सुग्रीव भाग गया और बाली विजित हो गया । बाली अपनी जाँघों को थपथपाता दुर्ग में चला गया । राम और लक्ष्मण ने भागते हुए सुग्रीव का पीछा किया । पर्वत क्षेत्र में पहुँचने पर सुग्रीव राम के चरणों पर गिर पड़ा । उसका हृदय निराशा, दुःख व भय से बोझिल था । उसने कहा, ''प्रभु ! मालूम नहीं आपने मेरा यह निरादर क्यों करवाया ? मैंने तो यह साहस इस आशा सहित किया था कि आप मेरी सहायता को आयेंगे । मैं उस क्षण तक प्रतीक्षा कर रहा था कि कब आपका बाण बाली का वध कर उसे समाप्त करे । किन्तु वह अवसर नहीं आया । निरुत्साही हो मैं उसके घूँसे सहन नहीं कर सका । अतः

जीवन रक्षा के लिए मुझे पीठ दिखाकर भागने का लज्जापूर्ण कार्य करना पड़ा। मेरा भाई पराक्रमी घूंसेबाज है। मैं उसके प्रकार सहने में असमर्थ हूँ।''श्रीराम ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, ''सुग्रीव! दुःखी मत हो, इसका कारण सुनो। तुम दोनों परस्पर समान रूप आकृति और कार्यों में इतने समान हो कि मैं उस पर ठीक निशाना नहीं लगा सका।''

''तुम्हें एक बार और अपने भाई का सामना करने को तैयार रहना है।'' इस प्रकार राम ने सुग्रीव को युद्ध के लिए बाध्य किया। सुग्रीव की युद्ध करने की कोई इच्छा नहीं थी किन्तु उसे विश्वास था कि इस बार राम अपने वचन पर दृढ़ रहेंगे और बाली का वध करेंगे। वह विश्वास सहित साहसपूर्वक चल पड़ा। राम ने कुछ जंगली फूलों की माला बनाकर सुग्रीव के गले में पहिना दी।

इस प्रकार प्रोत्साहित कर सुग्रीव को राम व लक्ष्मण ने बाली के दुर्ग पर पुनः आह्वान करने को कहा। राम और लक्ष्मण निकट के एक वृक्ष के पीछे छिप गए। जब युद्ध के लिए उत्सुक बाली बाहर निकला तो सुग्रीव भयभीत हो गया। उसने राम से सहायतार्थ शीघ्र ही वहाँ आने के लिए हार्दिक प्रार्थना की और अपने शत्रु से मिलने को आगे बढ़ गया। अपनी योग्यताओं को सिद्ध करने के लिए उसने पूर्ण सामर्थ्यानुसार युद्ध किया। जब उसकी शक्ति समाप्त होने लगी और उसमें थकान का प्रथम चिह्न परिलक्षित हुआ तो उसने केवल एक बार ही पुकारा–राम! यह पुकार सुनते ही राम ने प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाकर सीधा बाली के गर्वित हृदय में मारा। बाली को मूर्छा आ गई और निस्सहाय हो वह भूमि पर गिर पड़ा। उस समय राम वीर बाली का सम्मान करते हुए वीर बाली के पास गए।

प्राणनाशक प्रहार द्वारा भूमि पर गिरने पर भी बाली पुनः बैठ गया। उसमें अतुलनीय शक्ति और साहस था। राम और लक्ष्मण को सामने देखकर धर्म और विनय से युक्त कठोर वाणी में बोला आपने यह पक्षपातपूर्ण कर्म क्यों किया? सुग्रीव ने जो आपका उपकार किया

क्या मैं वह करने से अस्वीकार करता? नहीं, यह कारण के बिना नहीं हो सकता। मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपने मुझे मेरे किस अपराध का दण्ड दिया है? कृपया मेरा दोष बताएं। मेरा वध करने के लिए एक साधारण शिकारी की भाँति वृक्ष के पीछे छिपने का क्या उद्देश्य है?'' श्रीराम ने बाली को कहा कि भाभी, बहिन, पुत्रवधु और कन्या ये चारों समान हैं। इन पर कुदृष्टि डालने से मनुष्य घोर पापी बन जाता है। ऐसे पापी को मारने से दोष नहीं लगता।

इस प्रकार बाली को मार कर श्रीराम ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। सुग्रीव को किष्किंधा का राजा और बाली के पुत्र अंगद को वहाँ का युवराज बना दिया। अब सुग्रीव अपनी स्त्री रूमा और राज्य को पाकर सुख से रहने लगा। वर्षा ऋतु आ जाने से राम और लक्ष्मण भी वहाँ, वन में एक गुफा में रहने लगे। वर्षा ऋतु समाप्त हो गई। परन्तु सुग्रीव श्रीराम को मिलने तक नहीं आया और भोगविलास में पड़ कर अपनी प्रतिज्ञा भी भूल गया।

इसके पश्चात् श्रीराम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण सुग्रीव को बुलाने के लिए किष्किंधापुरी को चल दिये। उधर हनुमान को यह चिन्ता हुई कि राजा सुग्रीव अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये। तब हनुमान झट सुग्रीव के पास गये और सीता को ढुंढवाने की याद दिलाई। अब तो सुग्रीव को अपनी प्रतिज्ञा के भूल जाने पर बड़ा पछतावा हुआ और वह मन में डरा कि कहीं श्रीराम मुझ पर क्रुद्ध न हो जावें। इतने ही में लक्ष्मण भी आ पहुँचे। उस समय लक्ष्मण की आँखें क्रोध में लाल हो रही थी। लक्ष्मण को देखते ही सुग्रीव के होश उड़ गये। जैसे तैसे हनुमान ने इनका क्रोध शान्त किया और सुग्रीव, अंगद, हनुमान आदि अनेक वानर तुरन्त लक्ष्मण के साथ श्रीराम के पास आये। सुग्रीव ने हाथ जोड़ कर श्रीराम से अपनी भूल की क्षमा माँगी। श्रीराम बड़े शांत स्वभाव थे।

अब सुग्रीव ने बहुत जल्द वानरों को बुला कर उनसे कह दिया। अपने स्वामी की आज्ञा पाते ही सब वानर सीता की खोज करने के

लिए जहाँ तहाँ चले गये। अब सुग्रीव ने अंगद, हनुमान, नल, नील, जाम्बवान् आदि महाबुद्धिमान और महाबलवान वानरों को बुलाया और उनको दक्षिण दिशा में जाने की आज्ञा दी। जब वे चलने को हुए तब श्रीराम ने उन सब में बुद्धिमान हनुमान को अपने हाथ की एक अंगूठी देकर कहा कि जब तुम्हें कहीं सीता मिले तब इस अँगूठी को हमारी पहचान के लिए उनको दे देना। हनुमान अँगूठी लेकर और मन में प्रसन्न होकर अंगद आदि के साथ दक्षिण दिशा को चल दिये।

इस प्रकार सीता की खोज में फिरते-फिराते दक्षिणी सागर का किनारा आ गया। वहाँ पहुँच कर इनको बहुत संदेह हुआ और सोचने लगे कि राजा सुग्रीव ने हमको सीता की समाचार लाने के लिए एक महीने का समय दिया था। उसके पूरा होने में थोड़े ही दिन शेष हैं। इधर सीता का पता नहीं चला। जो उनका बिना पता लगाये हम लौट जाएं तो राजा हमको मार डालेगा। जब ये सागर के किनारे नाना प्रकार से सोच-विचार कर रहे थे तब वहाँ उनकी जटायु के भाई वृद्ध सम्पाति से भेंट हुई। सम्पाति ने कहा–

मैंने दुष्ट रावण द्वारा हरकर ले जाती हुई एक रूपवती और सब अलंकारों से सुसज्जित युवती स्त्री को देखा था। वह स्त्री राम-राम और लक्ष्मण-लक्ष्मण कहती रोती हुई और अपने आभूषण फेंकती हुई आपने अंगों को पटकती हुई जा रही थी। वह बार-बार राम का नाम ले रही थी। इसलिए मैं समझता हूँ कि वह सीता ही होगी। सीता जीती जागती है। इसी समुद्र के परले किनारे पर लंका नाम की एक राक्षसों की बस्ती है। वहाँ का राजा बड़ा बली है। वही सीता को चुराकर ले गया है।

इतना कह कर सम्पाति तो चला गया। अब वानर आपस में सागर के पार जाने का विचार करने लगे। सागर फाँदने के लिए किसी की हिम्मत न पड़ी। सब चुपके हो गये। किन्तु अंगद ने कहा कि मैं सागर को कूद तो जाऊँगा पर मुझे लौटने में संदेह है। इस तरह जब

किसी की हिम्मत सागर कूदने की न देखी तक जाम्बवान् ने हनुमान को उनका बल याद दिलाया तो हनुमान भी अपने बल को याद करके जोश में भर गये। इन्होंने उस समय अपना शरीर इतना बढ़ाया कि देखने में मालूम होते थे जैसे कोई पर्वत हो।

(5) सुन्दरकाण्ड

किष्किंधाकाण्ड के अंत में बताया गया है कि सम्पाति नामक गिद्ध से सीता के विषय में यह जानकर कि वह सागर पार त्रिकूट पर्वत पर बसी लंका की अशोक वाटिका में रहती है, जाम्बवान् ने कहा कि सागर पार करने तथा सीता के मिलने का कठिन कार्य केवल हनुमान कर सकते हैं। अतः उन्हीं को वहाँ जाना चाहिए। यह सुनते ही हनुमान बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि उन्हें श्रीराम की सेवा का एक अवसर मिल रहा था। अतः वह राम की वन्दना करने के उपरांत चल पड़े। मार्ग में मैना के बाद उन्हें सागर पार करना था। लंका के चारों ओर ठाठ मारते हुए सागर था। उसकी सुरक्षा के लिए एक राक्षसी रहती थी। वह सर्पों की माता थी और बड़ी मायाविनी थी।

हनुमान को लंका में प्रवेश करने से पूर्व और भी बाधाओं का सामना करना पड़ा। सुरसा को छकाकर कुछ ही दूर गये होंगे कि उन्हें छायाग्रहिणी सिंहिका नामक एक राक्षसी का सामना करना पड़ा। इस राक्षसी की विशेषता थी कि वह आकाश में उड़ते हुए प्राणियों की जल में पड़ी छाया को पकड़ कर उस उड़ते हुए प्राणी को निगल जाती थी। आकाश में उड़ते हुए हनुमान को देखकर उसने उनको भी इसी प्रकार निगलना चाहा परन्तु हनुमान को पहले ही उसके कपट का पता चल गया और इससे पूर्व कि वह उनका भक्षण करती उन्होंने अपने वज्र मुष्टि प्रहार से उसका वध कर दिया।

उस राक्षसी को मारने के उपरांत सागर पार कर हनुमान ने लंका

में प्रवेश किया। वहाँ के उपवन की शोभा देख वह मुग्ध हो गये और रावण के स्वर्ण-निर्मित दुर्ग, वहाँ के ऐश्वर्य, राक्षस सेना व उसके योद्धाओं, नगर की सुंदरियों, मल्लों आदि को देखकर जान गये कि वस्तुतः रावण की शक्ति, उसका ऐश्वर्य-वैभव देवताओं से भी अधिक है। नगर की रक्षा के लिए अनेक राक्षस योद्धा तैनात थे। वे नगर तथा दुर्ग की रक्षा बड़ी सावधानी से कर रहे थे। उनकी आँख बचाकर नगर में प्रवेश करना कठिन था।

अतः उन्होंने मच्छर के समान लघु रूप धारण कर दुर्ग-महल में प्रवेश करना चाहा। परन्तु सफल नहीं हो पाये क्योंकि उन्हें लंका नामक राक्षसी ने देख लिया और बोली-मेरी आँखों में धूल झोंक कर कहाँ चले? तू मेरा आहार बनेगा। हनुमान ने तुरन्त उस पर मुष्ठि का प्रहार कर उसको लहूलुहान कर दिया। वह कुछ क्षण तक बेहोश रही। होश आने पर उसने कहा—जब ब्रह्मा ने रावण को वरदान दिया था तब मुझसे यह भी कहा था कि जब तू किसी वानर के हाथों क्षत-विक्षत हो तो समझ लेना कि रावण का अंत निकट है। तुम श्रीराम के दूत हो, सहर्ष नगर में जाओ और श्रीराम का कार्य पूरा करो।

तभी संयोगवश लंकापति रावण अनेक सुन्दर स्त्रियों के साथ वहाँ आया। उसने सीता को अपनी अर्द्धांगिनी बनने के लिए अनेक प्रलोभन दिये। उन्हें अपनी पटरानी बनाने का वचन दिया, भय भी दिखाया पर सीता पर उसकी बातों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए रावण से प्रत्यक्ष बात न कर उन्होंने तिनके की ओट लेकर उसे स्पष्ट शब्दों में फटकारते हुए कहा कि वह राम के चरणों की धूलि के समान भी नहीं है। राम सूर्य के समान हैं तथा वह जुगनू के समान। सीता के शब्दों से अपमानित हो रावण उसका वध करने के लिए दौड़ा परन्तु उसकी पत्नी मंदोदरी ने उसे रोक दिया। वह आगबबूला हो अपने विश्राम कक्ष में चला गया और जाते-जाते राक्षसियों को आदेश देता गया कि वे सीता को तरह-तरह की यातनाएँ दें। स्वामी के आदेश पर जब अशोक वाटिका में प्रहरी की तरह नियुक्त राक्षसियाँ सीता को यातना देने लगीं तो त्रिजटा नामक संत स्वभाव की राक्षसी ने उन्हें अपना सपना सुनाते हुए उन्हें

रोका । उसने बताया कि उसने सपने में रावण का वध तथा लंका का विध्वंस देखा है ।

हनुमान सीता की उस करुण कथा को और अधिक देर तक नहीं देख सके और उन्होंने राम की दी हुई मुद्रिका नीचे डाल दी । सीता ने उसे उठाया जब देखा कि उस पर राम नाम अंकित है तो उनके मन में एक साथ प्रसन्नता तथा आशंकाजनित शोक के भाव उमड़ने लगे । उसे राम की भेंट समझ जहाँ वह हर्षमग्न हो उठीं वहीं राम पर आई आपदा की आशंका से वह काँप उठी—कहीं राम की हत्या कर निशाचरों ने उनकी अंगूठी उनके सामने न डाल दी हो । सीता के मुख के भाव देखकर उनकी व्यथा समझ गये और उन्हें आश्वस्त करने के लिए राम के गुणों का गान करने लगे । उन्होंने उस गुणगान को मन लगाकर एकाग्रचित से सुना और बोलीं जो राम के गुण गान कर तसल्ली दे रहा है, वह छिपा क्यों है ? प्रकट क्यों नहीं होता ? हनुमान ने प्रकट होकर सीता को अपना परिचय दिया—

मैं राम का सेवक और दूत हनुमान हूँ और यह मुद्रिका राम ने निशानी के रूप में आपको देने के लिए ही दी थी ।

सीता के प्रश्न करने पर हनुमान ने बताया कि उनकी तथा राम की भेंट किस प्रकार हुई । उन्होंने सीता को बताया कि राम-लक्ष्मण स्वस्थ हैं परन्तु राम उनके विरह में अत्यंत दुःखी हैं । उन्हें कुछ दिन पूर्व ही यह ज्ञात हुआ कि रावण छल से अपहरण कर आपको यहाँ ले आया है । अब वह शीघ्र ही आयेंगे और रावण का वध कर आपको अपने साथ ले जायेंगे । उन्होंने सीता को राम का सन्देश सुनाया जिसमें राम ने सीता के प्रति अपना प्रगाढ़ प्रेम तथा उनके वियोग में अपनी व्यथा का वर्णन किया था । अपने प्राणनाथ राम का सन्देश सुन सीता हर्षविभोर हो उठीं । प्रेममग्न हो पति का ध्यान करने लगीं । पहले तो सीता को सन्देह हुआ कि हनुमान जैसे वानरों की सहायता से राम रावण तथा उसके बलवान योद्धाओं को, उसकी अपार सेना को कैसे पराजित करेंगे । परन्तु जब हनुमान ने अपना वास्तविक पर्वताकार शरीर दिखाया तो वह आश्वस्त हो गईं । उन्होंने हनुमान को आशीर्वाद दिया ।

कुछ समय पश्चात् त्रिजटा उस वृक्ष के पास आकर सीता के चरणों पर गिर पड़ी और अति निराशापूर्वक वही बैठ गई। उन्होंने सीता का कुशल-क्षेम पूछा। वह सीता के पक्ष में ही थी इसलिए सीता ने उन्हें बताया कि किस प्रकार त्रिजटा का स्वप्न सत्य हुआ और वास्तव में वानर ने लंका में प्रवेश किया था। सम्पूर्ण घटना सुनने पर त्रिजटा ने अत्यधिक उत्साह और उत्सुकता प्रकट की। उन्होंने सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने की उत्सुकतावश सीता से विभिन्न प्रश्न किए। सीता ने उन्हें वृक्ष की शाखा पर बैठे वानर और उसके द्वारा लाई गई मुद्रिका दिखाई। उसने अति श्रद्धापूर्वक मुद्रिका को सिर से लगाया। हनुमान सीता से अकेले में मिलने का अवसर देख रहे थे और शीघ्र ही उन्हें यह मिल गया। हनुमान नीचे कूदे और मंद स्वर में सीता से बोले,

माता! व्याकुल और दुःखी मत हो। मेरी पीठ पर बैठो और मैं तुम्हें पलभर में ही उस स्थान पर ले जाऊँगा। जहाँ राम और लक्ष्मण आपके समाचार की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सीता जी ने उत्तर दिया–

हनुमान! वास्तव में मैं तुम्हारी बात पर अति प्रसन्न हूँ। मैं उनके वियोग में अति पीड़ित हूँ। तुम्हारे मधुर वचन मुझे उसी प्रकार शांति प्रदान करते हैं। जिस प्रकार एक झंझापूर्ण समुद्र में नौका का सहारा हो। किन्तु क्या तुम्हें ज्ञात है कि मैं अपने स्वामी के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति का स्पर्श नहीं करती। फिर मैं तुम्हारी पीठ पर कैसे बैठ सकती हूँ, जरा विचारो।

सीता के इन वचनों ने हनुमान का हृदय विर्दीण कर दिया और उन्हें अपने द्वारा प्रस्तावित उपाय पर खेद हुआ। हनुमान ने कहा–माता बड़ी भूख लगी है, यदि अनुमति हो तो इस वाटिका के मधुर फल खाकर तृप्त हो जाऊँ। सीता ने सावधान किया कि वाटिका में पहरेदार राक्षस बड़े विकराल और बलशाली हैं। हनुमान ने कहा कि उन्हें तनिक भी भय नहीं है तो सीता ने अनुमति दे दी और हनुमान ने तुरन्त वाटिका के वृक्ष उखाड़ डाले और फल तोड़-तोड़ कर अपनी भूख शांत की।

अशोक वाटिका के पहरेदार राक्षस ने इसकी सूचना रावण को

दी। उसने उन प्रहरियों की सहायता के लिए कुछ और वीर योद्धा भेजे परन्तु उनको हनुमान ने मार गिराया। तब रावण ने अपने पुत्र अक्षय कुमार को एक अन्य सैनिक टुकड़ी के साथ भेजा परन्तु हनुमान ने उसका भी वध कर दिया। राक्षस सेना दुम दबा कर भाग खड़ी हुई। पुत्र के वध का समाचार सुन रावण कुछ देर तक तो शोक-संतप्त रहा फिर अत्यंत कुपित होकर अपने ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद को हनुमान को दण्ड देने के लिए भेजा। जब इन्द्र को भी जीतने वाला मेघनाद चलने लगा तो रावण ने आदेश दिया–

उस वानर की हत्या मत करना। केवल बंदी बनाकर मेरे सामने उपस्थित करना है। मैं भी तो देखूँ कि यह वानर कौन है? कैसा है? कहाँ से और क्यों आया है?

पिता की आज्ञा पाकर मेघनाद अपने योद्धाओं को लेकर हनुमान को बंदी बनाने के लिए चल पड़ा। हनुमान ने उसे अपनी ओर आते देखा तो उत्साह तथा क्रोध से गरजे और एक विशाल वृक्ष को उखाड़ कर उससे शत्रु योद्धाओं को हताहत करने लगे। मेघनाद भी उनके मुष्टि प्रहार से मूर्च्छित हो गया परन्तु कुछ क्षण बाद होश आने पर उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया जिसके आघात से हनुमान मूर्च्छित हो गिर पड़े, मेघनाद ने तुरन्त उन्हें नागपाश में बांध लिया। वह हनुमान को बन्दी बनाकर रावण की सभा में ले आया। रावण ने परिचय पूछा तो हनुमान राम की महिमा और उनके प्रताप का वर्णन करने लगा। उन्होंने रावण पर व्यंग्य किया तथा राम की प्रशंसा की।

राम की प्रशंसा सुन कर रावण इतना कुपित हुआ कि उसने अपने सैनिकों को हनुमान का वध करने का आदेश दिया। तभी विभीषण वहाँ आ पहुँचे। उसने विनयपूर्वक रावण को समझाया कि इसका वध करना नीति के विरुद्ध है। रावण को भी यह ज्ञात था। अतः उसने उसकी बात मान कर दूसरा आदेश दिया–इसका वध मत करो। केवल अंग-भंग कर छोड़ दो। उसने स्वयं प्रस्ताव रखा। इस धृष्ट, हठी वानर के लिए उपयुक्त सजा यही है कि इसकी पूंछ में आग

लगाकर इसे पूंछहीन बना कर छोड़ दिया जाये क्योंकि वानर को सबसे अधिक मोह अपनी पूंछ से होता है। रावण का सुझाव सभी राक्षसों को बहुत अच्छा लगा और वे हनुमान की पूंछ को जला दिया। फिर बड़ा उत्सव मनाते हुए, गाजे-बाजे के साथ नगर में घुमाया गया। हनुमान ने लघु रूप धारण कर लंका के भवनों की छतों, महारियों पर चढ़ गये और उछलते-कूदते एक-एक भवन को जलाने लगे।

रावण की स्वर्ण की लंका जलने लगी। सब नगर निवासी हाहाकार कर प्राण बचाने के लिए इधर-उधर दौड़ने लगे। लंका को जलाने के पश्चात् हनुमान ने सागर के जल में अपनी पूंछ बुझाई और फिर सीता माता के पास आकर उन्हें प्रणाम किया, उनसे विदा माँगी। चलते समय उन्होंने सीता से प्रार्थना की कि वह भी निशानी के रूप में अपना कोई आभूषण उन्हें दे दें। सीता ने अपनी चूड़ामणि उतारकर उन्हें दे दी और कहा कि तुमने मेरी दशा स्वयं आँखों से देख ली है। श्रीराम से जाकर इतना निवेदन करना कि वह शीघ्रातिशीघ्र मुझे यातना-मुक्त करें। यदि वह एक मास के अन्दर नहीं आए तो मैं अपने प्राण दे दूँगी। फिर मुझे यह कभी नहीं पायेंगे। हनुमान ने सीता माता को विश्वास दिलाया कि श्रीराम शीघ्र ही आकर उन्हें बन्धनमुक्त करेंगे।

सीता से विदा लेकर हनुमान पुनः सागर पार कर वहाँ लौटे जहाँ जाम्बवान्, अंगद आदि वानर-भालू सेना के साथ रह रहे थे। जब वह शिविर के निकट पहुँचे तो उन्होंने हर्ष-ध्वनि की। उसे सुन तथा हनुमान जी को देख सभी वानर और भालू प्रसन्न हो उठे। हनुमान के सफल अभियान पर हर्षित होकर उन्होंने उत्सव मनाया। यद्यपि उन्होंने मधुबन में आकर फल खाये। सुग्रीव को जब यह समाचार मिला तो वह समझ गये कि हनुमान श्रीराम का कार्य पूरा कर लौटे हैं। वह हनुमान से मिले ओर फिर दोनों ही राम के दर्शन करने चले दिये। राम ने उनका स्वागत किया। सब वानरों को गले लगाया। जाम्बवंत ने उन्हें हनुमान द्वारा किये गये कार्यों—सीता से भेंट, लंका दहन आदि

का विवरण दिया। राम ने सारा वृत्तांत सुनकर हनुमान का आभार माना। उन्हें गले लगाया और प्रिय पत्नी के समाचार पूछे।

हनुमान ने सीता की शोचनीय दशा, प्रभु-प्रेम, निराशा आदि का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा कि उन्होंने आपके लिए अपनी निशानी चूड़ामणि तथा सन्देश भेजा है। जब हनुमान ने सीता की करुण दशा का वर्णन अत्यन्त मार्मिक शब्दों में किया तो राम-प्रेम विह्वल हो उठे। प्रश्न करने पर हनुमान ने उन्हें यह भी बताया कि वह किस प्रकार सागर को लांघ कर लंका पहुँचे और उन्होंने रावण के वन, उपवन, वाटिका, दुर्ग, महल आदि को कैसे विध्वंस किया, राक्षसों को कैसे मारा तथा लंका कैसे जला कर राख कर दी। परन्तु इस कार्य का श्रेय स्वयं न लेकर उसका कारण प्रभुकृपा बताई।

राम ने सुग्रीव को बुलाकर उससे लंका प्रस्थान करने की तैयारी करने को कहा। सुग्रीव ने अपने सेनापतियों को बुलाकर आदेश दिया और कुछ समय में ही वानर-भालुओं की सेना कूच के लिए तैयार हो गई। राम को प्रस्थान करते देख आकाश में देवताओं ने हर्षित हो पुष्प-वर्षा की। सेना का प्रस्थान होते ही एक ओर सीता को सगुन तथा रावण को अपशकुन होने लगा।

हनुमान द्वारा लंका जलाये जाने के पश्चात् से लंका निवासी अत्यंत चिंतित रहने लगे थे। वे सोचते थे और परस्पर बात करते थे कि जिसके दूत ने इतना कहर ढाया है उसके स्वयं आने पर तो पता नहीं लंका और लंकावासियों की कितनी दुर्दशा होगी। नागरिकों के बीच होने वाले वार्तालाप की बातें जब रावण की पत्नी मंदोदरी ने सुनी तो वह भी अत्यंत व्याकुल हो उठी। उसने पुनः एक बार पति को समझाया—राम से द्रोह त्याग, सीता को उनके पास लौटा दो, इसी में तुम्हारा, तुम्हारे कुल का तथा लंका का कल्याण है। परन्तु अहंकारी रावण ने उसकी भीरुता का मज़ाक उड़ाया। अपनी शक्ति का बखान किया और वह दरबार को चला गया।

सभा में पहुँचते ही उसे समाचार मिला कि राम अपनी शक्तिशाली वानर सेना के साथ सागर के उस पर आ पहुँचे हैं। कुछ

चिन्तित हो उसने अपने मंत्रियों से परामर्श किया और पूछा कि अब क्या करना चाहिए। उसके मंत्रियों ने उसे राम की प्रतीक्षा करने के लिए कहा। उन्होंने उसका गुणगान करते हुए, उसकी अपार शक्ति और पराक्रम की याद दिलाते हुए उससे निश्चिन्त् रहने का परामर्श दिया। उसी समय विभीषण आये, उन्होंने मंत्रियों की बात न मानकर राम की शरण में जाने और सीता को लौटाने की बात कही। माल्यवान नामक मंत्री ने भी विभीषण की बात का समर्थन किया।

विभीषण तथा माल्यवान के सद्परामर्श को सुन अहंकारी रावण आग बबूला हो उठा और उसने इन दोनों को राज-सभा से निकाल बाहर करने का आदेश दिया। रावण का कोप देखकर माल्यवान तो अपने घर चला गया परन्तु विभीषण पुनः रावण को समझाने लगा कि कुबुद्धि, अहंकार, नारी प्राप्ति त्याग कर राम को सीता लौटा दे और राम की शरण में चले जावें। रावण विभिषण के दुराग्रह पर क्रुद्ध हो उठा। विभीषण को अपना विरोधी तथा राम का मित्र समझकर उसका क्रोध इतना तेज भड़का कि उसने अपने भाई को लात मारी। इस अपमान से क्षुब्ध हो विभीषण ने घोषण की कि वह अब राम की शरण में जा रहा है। वह अपने साथियों के साथ राम के शिविर की ओर चला। उसके मन में राम के दर्शन करने की तीव्र अभिलाषा थी। जब वह राम के शिविर के निकट पहुँचा तो वानरों ने उसे शत्रु का गुप्तचर मान उसे वहीं रोक दिया और सुग्रीव को सूचना दी कि रावण का भाई आया है।

जब सुग्रीव ने राम को बताया कि रावण का भाई आया है तो सुग्रीव के संदेह करने पर भी उन्होंने उसे शरणागत जान उसे अपने पास लाने का आदेश दिया। जब वानरों ने विभीषण को राम के सम्मुख उपस्थित किया तो वह राम के सौन्दर्य, प्रभाव, तेज को देखकर विस्मयमुग्ध हो उठा और अपने बड़े भाई रावण द्वारा अपने साथ किये गये अत्याचार व अपमान की बात कही और उनसे शरण माँगी। राम ने उसके दीन वचन सुन उसे गले लगाया, अपने पास आसन पर बिठाया। उसकी कुशल-क्षेम पूछी। विभीषण ने अपने अवगुण, दोष

बताते हुए पुनः राम की वन्दना की। उसका भक्तिभाव तथा अपने प्रति निष्ठा देख राम ने तुरन्त उसका राजतिलक कर दिया। तदुपरांत राम ने सुग्रीव तथा विभीषण से पूछा कि इस विशाल सागर को जो उनके तथा सीता के मार्ग में व्यवधान बना हुआ है, कैसे पार किया जाये।

विभीषण ने कहा कि यद्यपि आपके बाण में एक नहीं करोड़ो समुद्रों को सोखने की शक्ति है तथापि मेरी सलाह यह है कि आप पहले उससे विनम्र शब्दों में प्रार्थना करें कि वह आपको सेना सहित उतरने में बाधा न डाले, आपका मार्ग प्रशस्त करे। राम को विभीषण का प्रस्ताव ठीक लगा परन्तु लक्ष्मण उससे सहमत नहीं हुए और उन्होंने राम से कहा कि वह विनय के स्थान पर पौरुष से काम ले और अग्नि बाण का प्रयोग कर सागर के जल को सुखा दें। राम ने भाई की बात न मानकर विभीषण के कथनानुसार सागर से विनती करने का निश्चय किया। सागर-तट पर गये, वहाँ कुशासन पर बैठकर सागर से प्रार्थना करने लगे।

उधर विभीषण के जाते ही रावण ने राम की योजना जानने के लिए गुप्तचर भेजे। राम के शिविर के निकट पहुँचकर जब उन्होंने विभीषण के साथ राम का मृदु तथा शालीन व्यवहार देखा तो वह राम के गुणों से प्रभावित हो वैर-भाव भूलकर उनका गुणगान करने लगे। जब वानरों को पता चला कि वे शत्रु के गुप्तचर हैं तो उन्हें बन्दी बनाकर सुग्रीव के पास ले गए। सुग्रीव ने आज्ञा दी कि इन दुष्ट गुप्तचरों को मार-मारकर इनकी खाल उधेड़ दें। वानर ऐसा ही करने लगे। बेचारे गुप्तचर हाहाकार करने लगे। उन्होंने राम की शपथ दिलाकर वानरों से विनती की कि वे उनके नाक-कान काटकर विरूप न बनायें। लक्ष्मण को उन पर दया आ गई और उन्होंने वानरों से कहा कि उन्हें छोड़ दें। गुप्तचरों के नायक को बुलाकर उन्होंने कहा कि वे रावण के पास जाकर उसे उनका पत्र दें तथा मौखिक संदेश भी सुना दें कि यदि उसे अपने प्राण प्रिय हैं और लंका की कुशल चाहता है तो सीता को लौटाकर राम से मित्रता कर ले। गुप्तचर लक्ष्मण के प्रति

आभार प्रकट करते हुए लंका लौट आये ।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने राम के शान्ति-स्वभाव की प्रशंसा की । उनकी सेना तथा सेनापतियों के बल के विषय में बताकर रावण को समझाया कि वह राम से वैर-भाव त्याग कर मित्रता कर ले । उसने यह भी बताया कि यद्यपि राम सहज ही सागर का जल सुखा सकते हैं परन्तु वह विभीषण की सलाह मानकार सागर-तट पर बैठे उससे प्रार्थना कर रहे हैं । दूत की यह बात सुन रावण अट्टहास कर उठा और राम को दुर्बल भीरु, कायर एवं मूर्ख बनाकर उनका उपहास करने लगा । तब उस दूत ने रावण को लक्ष्मण द्वारा सौंपा गया पत्र दिया । रावण ने मंत्री को बुलाकर वह पत्र पढ़ने के लिए कहा जिसमें उससे आग्रह किया गया था कि वह राम का विरोध त्याग कर उनकी शरण में आ जाये । दूतों ने भी रावण को पत्र में दी गई सलाह के अनुसार आचरण करने का परामर्श दिया । परन्तु उस दुष्ट व अहंकारी रावण ने उस दूत पर अपने चरण का प्रहार किया । वह भी विभीषण के समान अपमानित अनुभव कर राम की शरण में चला गया ।

उधर राम को सागर से प्रार्थना करते-करते तीन दिन व्यतीत गये परन्तु उसके कानों पर जूं तक न रेंगी । उसकी जड़ता तथा कृपणता देख राम को क्रोध आ गया और उन्होंने लक्ष्मण को आदेश दिया कि वह उनका धनुष-बाण लायें, वह अभी अपने अग्निबाण से इस सागर का अस्तित्व ही मिटा देंगे । ज्योंही राम ने धनुष पर बाण संधान किया उसके प्रभाव से सागर में आग लग गई और उसमें रहने वाले जीव-जन्तु बेहाल होकर आर्तनाद करने लगे । जब सागर ने यह देखा तो वह विप्र रूप धारण कर स्वर्ण के थाल में अनेक मणि रखकर राम के कोप को दूर करने के लिए हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करने लगा ।

अपने किये पर पश्चाताप प्रकट कर अभय-दान मांगने लगा । कृपालु राम मुस्कुराये और उससे सागर पार करने का उपाय पूछा । सागर ने सुझाव दिया कि उसकी सेना में नल और नील नामक दो भाई हैं । उन्हें वरदान प्राप्त है कि वे भारी-भारी विशालकाय पर्वतों को भी जल में तैरा सकते हैं । अतः उनकी सहायता से सागर पर पुल बनाया

जाए । उसने इस कार्य में सहयोग देने का वचन दिया । उसने राम से यह प्रार्थना की कि वह उसके उत्तर तट पर रहने वाले उत्पाती, दुष्ट, राक्षसों का संहार कर दें । राम ने वैसा ही किया ।

(6) युद्धकाण्ड

अब नल, नील आदि वानरों ने बहुत शीघ्र सागर का पुल बना दिया और सब उस पुल पर होकर उसके पार पहुँच गये । लंका के पास ही इनकी सारी सेना जा टिकी । खुशी के मारे वानर वृक्षों पर चढ़-चढ़ कर उनको हिलाते थे । एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर खूब कूद-फाँद करते थे । वानरों की बहुत बड़ी सेना के शोरगुल को सुनकर राक्षसों ने रावण के पास समाचार भेजा कि श्रीराम बहुत से बलवान वानरों की सेना लेकर लंका पर चढ़ाई कर दी है । रात भर सेना बड़े सुख से सोई । सुबह हुई तो श्रीराम ने सुग्रीव, अंगद, हनुमान, आदि बड़े-बड़े बुद्धिमान, बलवान् वानरों को पास बुला कर कहा कि बोलो, अब क्या करना चाहिए । विचार करने के पश्चात् वह रावण को पहले समझाए यदि वह न माने तो फिर युद्ध करना चाहिए ।

अंगद श्रीराम का दूत बन कर लंका में गये और दरबार में बैठे हुए रावण से बहुत सी समझाने की बात कही । परन्तु रावण न माना । रावण ने अंगद को भी प्रलोभन देना आरम्भ किया । परन्तु अंगद पर उसके प्रलोभन का कोई असर न पड़ा । अन्त में लाचार हो अंगद लौट आये और सब हाल श्रीराम से सुना दिया । अब सब का यही परामर्श ठहरा कि वह दुष्ट बिना युद्ध के सीता को नहीं देगा । अब युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं । मोर्चाबन्दी से लंका के चारों दरवाजों पर वानरों की सेना जा डटी । जो राक्षस दरवाजे पर आता, वानर उसे चट मार डालते । इस प्रकार सारी लंका में हाहाकार मच गया । जब रावण तक समाचार पहुँचा रावण ने बहुत सी सेना वानरों से लड़ने के लिए भेजी परन्तु वह सब मारी गई ।

जब रावण ने देखा कि मेरे बहुत से बड़े-बड़े सेनापति मारे गये

तब उसको बड़ा क्रोध आया। उसने अपने वीर पुत्र मेघनाद को युद्ध के लिए भेजा। वह मेघनाद ऐसा वैसा वीर न था। वह बड़ा भयंकर योद्धा था। उसमें अत्यावश्यक बल था उसने अपने पैने बाणों से बहुत से वानरों का मार गिराया। जब लक्ष्मण ने देखा कि हमारे बहुत से वानरों को उसने मार डाला, तब उसे बड़ा क्रोध आया। मारे क्रोध से उनकी आँखें लाल हो गई।

अब लक्ष्मण और मेघनाद का युद्ध होने लगा। दोनों बड़े वीर थे। मेघनाद के पैने तीरों ने लक्ष्मण के शरीर को बींध दिया। क्रोध में आकर उसने भी मेघनाद को मारना शुरू कर दिया। इनकी मार से मेघनाद भी इतना विकल हो गया कि उसे अपने तन की भी सुध-बुध न रही। अब लक्ष्मण ने मेघनाद के सारथी और घोड़ों को मार गिराया और रथ को चूर-चूर कर दिया। जब मेघनाद ने देखा कि यह तो मुझे थोड़ी देर में मार ही डालेगा। तब उसने लक्ष्मण पर वीरघातिनी शक्ति मारी। वह शक्ति लक्ष्मण के कलेजे को पार कर गई। लक्ष्मण अचेत हो धरती पर गिर पड़े।

जब संध्या हुई और युद्ध बंद हुआ तब श्रीराम ने लक्ष्मण को न देख कर हनुमान से पूछा कि लक्ष्मण कहाँ है? लक्ष्मण कहाँ है? वे तो शक्ति के लगते ही मूर्छित हो गये। हनुमान ने वहाँ से उसको लाकर श्रीराम के आगे लिटा दिया। श्रीराम को अपने प्यारे भाई की ऐसी दशा देख कर बड़ा शोक हुआ। जाम्बवान् के कहने से लंका में रहने वाले सुषेण वैद्य के बुलाने को हनुमान गये। वे वहाँ जाकर बड़े आदर से वैद्य को बुला लाये।

लक्ष्मण को देखकर वैद्य ने कहा कि एक संजीवनी बूटी हिमालय पर्वत पर है। वह लाई जाये तो उससे इनके प्राण बच सकते हैं। नहीं तो सवेरा होते फिर ये किसी तरह भी नहीं जी सकते। यह सुनकर श्रीराम का रहा सहा विश्वास भी जाता रहा। अब वे सोचने लगे कि ऐसा कौन है तो इतनी दूर से संजीवनी बूटी को पहचान कर रात ही रात में ला दे। सामने हाथ जोड़े हनुमान खड़े थे। उनको देख कर श्रीराम ने उनसे कहा कि हनुमान! तुम्हारे अतिरिक्त और कौन है जो

इस काम को कर सके। इस काम के करने में केवल तुम ही समर्थ हो। इतना सुनते ही हनुमान संजीवनी बूटी लेने के लिए चल दिये। पर्वत पर पहुँच कर उन्होंने देखा कि यहाँ तो एक प्रकार की अनेक बूटियाँ हैं। सही पहचान न होने के कारण मिलती-जुलती रंग-रूप वाली बहुत सी बूटियाँ उखाड़ लाये। जिसे देख कर राम व सुग्रीव आदि ने कहा कि तुम तो पहाड़ ही उठा लाए।

सूर्य उदय से पूर्व ही हनुमान श्रीराम के पास संजीवनी बूटी को लेकर पहुँच गये। हनुमान की बुद्धिमानी को देखकर श्रीराम उनसे बड़े प्रेम से मिले। वैद्य तो वहाँ बैठे ही थे। उन्होंने पर्वत पर से संजीवनी बूटी लेकर लक्ष्मण को सुंघा दी। उसे सूंघते ही वे ऐसे उठ बैठे मानों सो कर उठे हों। अब दिन निकल आया। सारी लंका में समाचार फैल गया कि लक्ष्मण फिर जीवित हो गये। अब फिर युद्ध होने लगा। रावण ने आज पहले अपने भाई कुम्भकर्ण को, बहुत सी सेना के साथ युद्ध में भेजा। कुम्भकर्ण भी बड़ा बलवान् था। वह युद्ध करने लगा। वह जिधर को निकला उधर ही वानरों को पकड़ कर मारने लगा। जब श्रीराम ने देखा कि यह दुष्ट तो हमारी सेना को ही मार डालेगा तब आप उससे युद्ध करने लगे। थोड़ी देर तक तो कुम्भकर्ण इनके साथ युद्ध करता रहा। परन्तु इनके पैने-पैने तीरों के सामने किसकी ताकत थी जो खड़ा रह सके। एक बार श्रीराम ने ऐसा तीर मारा कि कलेजे के भीतर घुस गया और कुम्भकर्ण का काम तमाम हो गया।

जब रावण ने कुम्भकर्ण के मरने का समाचार सुना तब उसे बड़ा दुःख हुआ। फिर उसने अपने पुत्र मेघनाद को लड़ने के लिए भेजा। यह वही मेघनाद था जिसने लक्ष्मण को मूर्च्छित कर दिया था। अब की वह बड़े जोर शोर से लड़ने को आया। आते ही वह बड़े जोर से गर्जने लगा। युद्ध के मैदान में आमने-सामने आकर बोला कि आओ मेरे सामने, मैं भी तो देखूँ तुम कैसे बलवान् हो। अरे राजपुत्रो! क्या काल से युद्ध करना चाहते हो? जाओ तुम्हारी कुशल इसी में है कि भाग जाओ, नहीं तो मैं तुमको मार डालूँगा। ऐसी गर्व की वाणी सुनकर राम और लक्ष्मण दोनों भाई युद्ध के सामान से तैयार होकर ललकारते हुए

आये और बोले—अरे दुष्ट! यह तो हम खूब जानते हैं कि अब तुम सबका काल आ गया है।

इस प्रकार दोनों ओर से गर्मागर्म बातें होकर युद्ध होने लगा। अब आपस में दोनों के शरीर लोहूलुहान हो गये। लक्ष्मण ने अपने पैने तीरों से उसके सारथी को मार गिराया और घोड़ों को मार कर रथ को भी चूर-चूर कर दिया। सारथी और घोड़ों को मरे देखकर मेघनाद को बड़ा क्रोध आया। वह दाँत पीसने और चारों ओर को दौड़ कर उनको मारने लगा। इस प्रकार बहुत देर तक युद्ध होता रहा। अन्त में लक्ष्मणजी ने क्रोध में भर कर एक ऐसा बाण छोड़ा कि वह लगते ही उसके कलेजे में घुस गया। तीर के लगते ही वह धड़ाम से पृथ्वी पर गिर कर मर गया। इसके गिरते ही वानर मारे खुशी के फूले न समाये। अब राक्षसों में भगदड़ मच गई। सब राक्षस भाग कर अपने-अपने घरों में जा घुसे। समाचार देने को भी रावण के सामने जाने की किसी की हिम्मत न पड़ी। बहुत कुछ जी कड़ा करके काँपते-काँपते कुछ राक्षस रावण के पास गये और उन्होंने नीचा सिर करके मेघनाद के मरने का समाचार उससे कह सुनाया।

मेघनाद का मरना सुनकर रावण को मूर्च्छा आ गई। थोड़ी देर में जब होश आया तब वह मारे क्रोध के काँपने लगा। क्रोध से उसकी आँखें लाल हो गई। होठ फड़फड़ाने लगे। वह मन ही बड़बड़ाते हुए बोला—यह सब विनाशलीला एक स्त्री के कारण हो रही है। मैं अभी जाकर विनाश की जड़ को ही काट डालता हूँ। सीता के मरने पर ही मेरे बेटे की आत्मा को शांति मिलेगी। वह अपनी तलवार लेकर सीता के पास अशोक वाटिका में जा पहुँचा। वह क्रोध में आकर कोई अनिष्ट कर बैठता कि उससे पहले ही उसके महामंत्री सुपर्शव ने उसे रोकते हुए कहा—

महाराज! आप जैसे विद्वान् को एक स्त्री का वध करना शोभा नहीं देता। इससे आपके नाम पर एक कलंक लग जायेगा। आप सीता को मत मारिए। यदि मेघनाद की मृत्यु का बदला लेना ही है। तो राम से युद्ध कर उसे परास्त कीजिए।

उसने झट से अपनी सेना तैयार कराई और स्वयं ही

तीर-कमान, ढाल-तलवार लेकर रथ में सवार सेना के साथ युद्ध के मैदान में चला गया। अब राम एवं रावण का बड़ा घोर युद्ध होने लगा। रावण बड़ा बलवान् था। वह अपने सामने देवताओं को भी कुछ नहीं समझता था। फिर मनुष्यों की तो वह परवाह ही क्या करता? रावण ने ऐसे विकट तीर श्रीराम पर मारे कि एक बार मूर्च्छा भी आ गई। श्रीराम को मूर्च्छित देखकर विभीषण अपनी गदा उठाकर रावण की ओर दौड़ा और झट उसकी छाती में, बड़े जोर से घुमाकर मारी। इतने में श्रीरामजी को भी होश आ गया। अब राम-लक्ष्मण दोनों भाई और सुग्रीव की सब सेना राक्षसों से युद्ध करने लगी और सब राक्षसों से तो वानर लड़ ही रहे थे। राम और रावण में ऐसा भयानक युद्ध हुआ कि ऐसा किसी का भी नहीं हुआ।

तभी राम ने रावण पर 31 बाण एक साथ छोड़े। वह रावण को भयंकर सर्पों के समान जाकर लगे। एक बाण रावण की नाभि के नीचे स्थित 'अमृत कुण्ड' में लगा। शेष 30 बाणों ने उसके सिर और हाथ विच्छिन कर दिये। भूमि पर गिरे शीश और अंग लोट पोट हो रहे थे और कुछ समय नृत्य करके फिर शान्त हो जाते थे। इस प्रकार रावण मारा गया। उसी पल आकाश नगाड़ों से गूंज उठा। वह दृश्य देखकर कपि नायक अवाक् रह गये। वह 18 दिन के इस राम-रावण युद्ध में राम की वीरता को देखकर चकित हो गये। वे उल्लासपूर्ण स्वर में चिल्लाये–

राम चन्द्र की जय हो।

रावण मरते ही सारी लंका में शोक फैल गया। वानर खुशी से कूदने लगे। जब इस दुष्ट राक्षस के मरने का समाचार वन में मुनियों ने सुना तब वे बड़े प्रसन्न हुए। सब ऋषि मुनि लोग श्रीराम को धन्यवाद देने लगे। अब युद्ध बंद होने पर सावधान होकर श्रीराम ने लक्ष्मण, हनुमान आदि बड़े-बड़े बुद्धिमानों को बुलाया। उनसे कहा कि हमने पहले प्रतिज्ञा की थी कि लंका का राज विभीषण को देंगे, इसलिए अब मैं उसको पूरा करना चाहता हूँ। अब उसका समय आ गया है। तुम लोग विभीषण के साथ लंका में जाओ और बड़े आनन्द के साथ

विधिपूर्वक विभीषण को राजतिलक करो। क्योंकि हम तो पिता की आज्ञा अनुसार नगर में नहीं जा सकते।

अब वे सब लंका में जाकर विभीषण को राजतिलक कर आये। विभीषण बड़ा धार्मिक और प्रभु भक्त था, इसलिये वहाँ के रहने वाले राक्षस भी धीरे-धीरे स्वभाव बदलने लगे। क्योंकि यह तो कहावत है कि ''यथा राजा तथा प्रजा''। फिर श्रीराम ने हनुमान को लंका में सीता की कुशलता का समाचार लाने के लिए भेजा। समाचार पहले इसलिये मंगाया कि कहीं राक्षसों ने उसको मार न डाला हो। अब हनुमान लंका को चल दिये। पहले की तरह अब वे छिप कर नहीं जाते थे। अब तो वे जिधर को जाते थे उधर ही से बहुत लंकावासी लोग हाथ जोड़े हुए इनका साथ देते थे। राक्षस हनुमान को सीता के पास ले गये। सीता के दर्शन करके वे मन में बड़े प्रसन्न हुए। दूर ही से उन्होंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

सीता भी उनको देख और पहचान कर बड़ी प्रसन्न हुई। हनुमान बोले– माताजी, श्रीराम ने रावण को मार दिया। मेघनाद और कुम्भकर्ण आदि हज़ारों राक्षस भी मारे गये। लंका का राज्य विभीषण को दे दिया। इन बातों को सुनकर सीता का चेहरा बदल गया। जो चेहरा पहले शोक में मुरझाया हुआ था वह अब खुशी से खिल गया। अब हनुमान श्रीराम के पास आये और सीता के सब कुशल-समाचार कह सुनाये। फिर श्रीराम ने सुग्रीव व विभीषण को बुला कर कहा कि वे हनुमान के साथ जाकर सीता को लंका से ले आओ।

तुरन्त ही आज्ञा पाकर वे लंका में पहुँचे। प्रभुकृपा से जब सीता लगभग 1 वर्ष पश्चात् रावण की क़ैद से लौटकर श्रीराम के पास आई। इसके उपरांत श्रीराम ने लोकनिंदा से बचने के लिए पराए घर में रही सीता के सतीत्व की कठोर परीक्षा ली। इसे ही मुहावरे में अग्नि परीक्षा कहते हैं। परन्तु कई पौराणिक भाइयो का विचार है कि सीता अग्नि में प्रवेश हुई और फिर बच गई। परन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि यह सब असम्भव एवं सृष्टिक्रम के विरुद्ध है। इसके पश्चात् श्रीराम ने सब वानरों को बुला कर कहा कि तुम्हारी ही सहायता से हमने रावण

को मारा और सीता को पाया। तुमने हमारे लिए बहुत कष्ट उठाये हैं। अब सब लोग अपने-अपने घर जाओ और आराम से रहो। परन्तु कोई भी जाने को सहमत न हुआ। सब बोले कि महाराज, हम सब तो आपके साथ अयोध्या जाकर आपके राजतिलक का उत्सव देखना चाहते हैं। श्रीराम ने कह दिया, कि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो चलो, मैं बड़ा प्रसन्न हूँ।

अब विभीषण लंका से एक पुष्पक विमान लाये। वह सोने का था, पाये उसके चाँदी के थे। बैठने के स्थानों पर रत्न जड़े हुए थे। जहाँ तहाँ उसमें बहुत से हीरे पन्ने लगे हुए थे। उसमें बहुत से बजने वाले घंटे भी बंधे हुए थे। चलते-चलते वे बड़ी मनोहर आवाज़ देते थे। वह आकाश में उड़ कर चलता था। उसको जहाँ चाहें वहाँ ले जावें और चाहे जहाँ उतार दें। यह उसमें बहुत ही अच्छा गुण था। उसके भीतर बड़ी चित्रकारी हो रही थी। बैठने के स्थानों पर बड़े सुन्दर मुलायम गद्दे बिछे हुए थे। वह बहुत बड़ा था। उसमें रसोई अलग बनी हुई थी। पुस्तकालय अलग था। सोने के कमरे अलग थे। हर मौसम के आराम के अलग-अलग मकान उसमें बने हुए थे।

ऐसे सुन्दर और अनोखे विमान पर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण सहित सवार हो गये। पीछे से इनकी आज्ञा पाकर विभीषण, हनुमान, सुग्रीव आदि सब वानर भी उस पर चढ़ गये। जब सब सावधानी से बैठ चुके तब श्रीराम की आज्ञा से वह विमान ऊपर को उठा और उत्तर दिशा की ओर आकाश मार्ग से ऊपर ही ऊपर चलने लगा। जब विमान ऊपर को उठा तब श्रीराम ने आप लंका की खूब सैर की और सीता को भी कराई। विमान में बैठे हुए वानर बड़े खुश हो रहे थे। मार्ग में जो स्थान देखने योग्य आता था उसे श्रीराम सीता को दिखाते और बतलाते जाते थे। इतने ही में चलते-चलते सुग्रीव की किष्किंधा नगरी आ पहुँची। श्रीराम ने कहा कि सीता, यह वानरों के राजा सुग्रीव की राजधानी है। सीता के मन में सुग्रीव आदि की स्त्रियों को देखने की बड़ी इच्छा उत्पन्न हुई। वे श्रीराम से बोली स्वामी! हमारी इच्छा है, यदि आपकी आज्ञा तो तो हम राजा सुग्रीव आदि की स्त्रियों को भी

अपने साथ अयोध्या ले चलें। उन्होंने आज्ञा दे दी। किष्किंधापुरी से उनको भी साथ ले लिया। सीता और वे स्त्रियाँ आपस में मिल कर बहुत ही प्रसन्न हुई।

अब किष्किंधा नगरी से विमान आगे चला। श्रीराम बोले– "हे प्रिये! यह जो बड़ा भारी पर्वत दीख रहा है इसका नाम ऋष्यमूक है। यहीं हमारी और सुग्रीव की मित्रता हुई थी। देखो! यह तमसा नाम की नदी है। यहाँ पर हमने तुम्हारे लिए बड़ा शोक किया था। यही पर हमने कबन्ध राक्षस को मारा था। देखो! यह जनस्थान भी आ गया। वह बड़ा भारी बढ़ का पेड़ है। यहीं रावण ने जटायु को मारा था। प्रिय सीते! यह वही हमारा प्यारा आश्रम है। देखो! वह हमारी पत्तों की कुटी भी दिखती है। यहाँ से तुमको रावण चुरा ले गया था। देखो! यह गोदावरी भी दीखने लगी। यहाँ पर महर्षि अगस्त्य का आश्रम है। देखो! यहाँ हमने विराध राक्षस को मारा था और यहाँ तुमसे अनसूया का मिलाप हुआ था। देखो! यह वही चित्रकूट दीखने लगा, जहाँ भरत मुझे लौटाने के लिए आये थे। देखो। यमुना नदी जो कैसी मनोहर दिखती है। अहा! यह भरद्वाज का आश्रम आ गया।"

यहाँ पर श्रीराम के कहने पर विमान को नीचे उतारा और वे भरद्वाजजी से मिले। उनसे मिल कर उन्होंने अपनी अयोध्यानगरी का कुशल समाचार पूछा। भरद्वाजजी ने कहा कि हे श्रीराम हम तुमको 14 वर्ष तक पिता जी की आज्ञा पालन करके कुशलपूर्वक आये देखकर बड़े प्रसन्न हैं। अयोध्या में सब कुशलपूर्वक हैं। भरत तुमको रात दिन याद करते रहते हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा कर रखी है कि श्रीराम 14 वर्ष बीतते ही अगले दिन दर्शन न देंगे तो मैं जीता न रहूँगा। महाराज आज 14 वर्ष पूरे हो जायेंगे। यदि तुम कल अयोध्या न गये तो भरत को बड़ा दुःख होगा। इसलिए आप कल दर्शन देकर अयोध्यावासियों का दुःख दूर कीजिए। श्रीराम ने कहा महाराज! मैं भी इसीलिए अयोध्या जाने की शीघ्रता कर रहा हूँ। अब आप ऐसी कृपा कीजिए कि जिससे यहाँ से अयोध्या तक हम सब बेखटके चले जाएं। इसलिए आप हमें आशीर्वाद दीजिए।

फिर श्रीराम ने हनुमान को बुला कर कहा कि हे वीर! तुम तुरन्त ही अयोध्या जाओ। वहाँ पहुँच कर देखो कि राज भवन में सब लोग

प्रसन्न तो हैं परन्तु मार्ग में शृंग्वेश्वर होते जाना। क्योंकि वहाँ मेरा मित्र गुह भील रहता है। उससे मिलना और मेरे आने का समाचार सुना देना। वह मुझे आता जान बड़ा प्रसन्न होगा। उसी से अयोध्या का और भरत का सब हाल पूछ लेना। तुम भरत के पास पहुँचो तब हमारी ओर से कहना कि राम, लक्ष्मण सीता सहित प्रसन्न हैं। मेरी यात्रा, अपने मिलने, सुग्रीव की मित्रता, लंका के युद्ध का वर्णन करना, कहना कि अब श्रीराम बहुत ही निकट आ रहे हैं, बहुत से वानरों समेत सुग्रीव व राक्षसों सहित विभीषण उनके साथ हैं।

भरत का विचार अच्छा या बुरा जैसा हो उसे तुम बुद्धि से जान लेना और लौट कर हमसे मार्ग में ही कह देना। यदि 14 वर्ष राज्य करने से उनको राज्य का लालच हो गया हो तो बड़ी अच्छी बात है। परन्तु तुम यह समाचार मुझे झट लौट कर रास्ते ही में सुना देना। यदि मेरी आने की आशा में बैठे हों और तुमको वहीं ठहराने लगे तो तुम ठहर जाना। अब हनुमान पवन के समान वेग से उड़ कर चल दिये। वे शृंग्वेरपुर में राजा गुह से मिले। उनसे मिलकर वे अयोध्या को चल दिये। वहाँ देखा कि अयोध्या के निकट ही नंदिग्राम में एक महात्मा श्रीराम की सूरत के, मृगशाला पहने बड़े शोकातुर और उदास अपने आश्रम पर सिंहसान बिछाये बैठे हैं। वे जटा रखाये हैं। सामने बड़ी सुन्दर राजगद्दी बिछा है। उस पर एक जोड़ा खड़ाऊँ की धरी है। बहुत पुरोहित मंत्री आगे बैठे हैं। राज का काम-काज हो रहा है। देखते ही समझ गये कि हो न हो ये भरत ही हैं।

14 वर्ष की अवधि पूरी होने को एक ही दिन शेष रहा था। भरत व अयोध्यावासी सब चिन्तित थे। माता और भाई शुभ सगुन देखकर राम के आने की आशा में प्रसन्न हो रहे थे। भरत की दायीं आँख और भुजा बारंबार फड़क रही थी। वे चिन्तित थे कि प्रभु आये क्यों नहीं। तभी ब्राह्मण के वेष में हनुमान वहाँ पहुँच गये। भरत को राम के आगमन की शुभ सूचना दी तथा आश्वस्त करके कि आप राम को प्राणों से भी प्रिय हैं, हनुमान राम के पास लौट गये। उन्हें भरत के गहरे प्रेम की सूचना दी।

इधर माताओं को राम के पहुँचने की सूचना दी और मंत्रियों तथा नगरवासियों को स्वागत की तैयारियाँ करने को कहा। राम के

स्वागत के लिए मधुपर्क सजाकर सब लोग उनके स्वागत के लिए आगे बढ़े। उधर राम, सुग्रीव आदि को अपनी नगरी और पास के स्थान दिखाते जा रहे थे। नगरवासियों को अगवानी के लिए आता देखकर श्रीराम ने विमान को वहीं उतारने को कहा। विमान में सबके उतरने के बाद उन्होंने पुष्पक विमान को तो पूर्व स्वामी कुबेर के पास जाने को कहा। आगे आकर उन्होंने गुरु वशिष्ठ, वामदेव आदि को प्रणाम किया। तब प्रणाम करते भरत को उठाकर गले से लगाया। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सब मिले। भरत और शत्रुघ्न ने सीता को प्रणाम किया। नगरवासियों को आता देखकर रामचन्द्र ने अनेक रूप धारण करके सबसे भेंट की, उधर तीनों माताएँ राम को आया देखकर विकल होकर दौड़ी।

राम-लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद सीता ने सासुओं को प्रणाम करके आशीर्वाद लिया। इसके पश्चात् राम ने सुग्रीव आदि का सबसे परिचय कराया। मुनि वसिष्ठ ने शुभ दिन देखकर शीघ्र ही अन्य ब्राह्मणों के साथ परामर्श करके राज्याभिषेक की तैयारी की। राम ने भरत की जटा सुलझाई। तीनों भाइयों को स्नान कराकर स्वयं भी किया। सासों ने सीता को उबटना लगाकर नहलाया। तब राम सीता के साथ सिंहासन पर बैठे। वैदिक रीति से राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ।

सीता सहित बैठे हुए राम की छवि में लाखों कामदेवों का सौंदर्य प्रस्फुटित था। देवतागण रघवुश के शिरोमणि की दिव्य चारुता से मोहित थे। राम स्वर्ण युक्त रेशमी वस्त्र पहिने थे। उनके हाथों और पैरों में विभूषित सुन्दर आभूषण उनके परम सौन्दर्य से प्रतिभासित थे। इस पूर्व की उदात्तता तथा राम के निजी प्रताप को देखकर तीनों लोक अति उल्लसित थे। वास्तव में, उस अनुपम दृश्य को देखने वाले सभी लोग भाग्यशाली थे। तभी विभीषण एक रत्नजड़ित हार लेकर आगे आए। यह हार समुद्र ने रावण को भेंट किया था। सीता ने उसे स्वीकार किया। उस हार की आभा से सम्पूर्ण कक्ष कान्तियुक्त हो गया और सभी लोग उस अलौकिक रत्नकला को देखकर विस्मित हो गए। किन्तु सीता ने माला को हाथ में लेकर राम की ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा। राम ने सीता के मन की बात जान ली और कहा, ''सीता! यहाँ उपस्थित लोगों में जो भी तुम्हारी अनुकम्पा के योग्य हो उसे यह भेंट दे दो।''

सीता ने पलभर विचार कर हनुमान की ओर देखा। उनकी

दयादृष्टि को देखकर हनुमान अति विनम्रतापूर्वक उनके समक्ष जाकर नतमस्तक हो गड़े हो गये। उन्होंने हनुमान की प्रशंसा करते हुए यह घोषित किया कि हनुमान त्रिलोक में अतुलनीय है। उन्होंने हनुमान की श्रद्धा-भक्ति की सराहना की। फिर राम सिंहासन से उठकर कक्ष से बाहर गए जहाँ विशाल जनसमुदाय उनके दर्शन हेतु प्रतीक्षारत था। राम ने उन्हें अपने ऐश्वर्यशाली रूप के दिव्य दर्शन दिए। वह सभी राम के दर्शन कर अपूर्व आनन्द में स्नात थे। सभी नगरवासियों को प्रीतिभोज करवाया गया और ठहरने को आरामदायक स्थान दिए गए। राम ने स्वर्ण, धन, वाहन, घर के बर्तनों, वस्त्रों, घरों व अन्य वस्तुओं के दान आदि का प्रबन्ध करवाया। इस उत्सव की अनुपम विशालता देखकर तथा वानर सैनिक विस्मित थे। उन्होंने छः मास तक नगर में रहकर अति उल्लासपूर्वक राम की दिन-रात सेवा की। सम्पूर्ण समय उन्हें अपने घरों, परिवारों अथवा राज्यों का कोई स्मरण नहीं हुआ।

अन्त में राम ने अपने साथ आए सभी साथियों और मित्रों को दरबार में बुलाकर यथोचित स्थान पर बिठाया। फिर उन्होंने अति मृदु व मधुर वचनों में उनसे इस प्रकार कहा, ''मित्रो! तुम सभी ने मेरे लिए कठोर परिश्रम किया है। तुमने अपने घर, पत्नियों, बच्चों, सम्पत्ति आदि की चिन्ता न करते हुए मेरे लिए विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का सामना किया। तुम सबके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई मित्र नहीं है। इसी कारण तुम सब के प्रति मेरा विशेष प्रेम और अनुग्रह है। तुम मुझे मेरे माता-पिता, मेरे भाइयों, मेरे राज्य, मेरी प्रजा तथा मेरी सीता से भी अधिक प्रिय हो। यह मेरी दृढ़ उक्ति है। अतः अब मैं चाहता हूँ कि तुम अपने-अपने घरों को जाओ।

सुनो, मैं तुम्हें संत के लक्षण बताता हूँ। संतजन इन्द्रिय सुखों से मोहित नहीं होते। उनमें सर्वोत्तम गुण और आचरण होते हैं। वे दूसरों को सुखी देखकर प्रसन्न होते हैं और दूसरों को दुःखी देखकर दुःखी होते हैं। वे सभी को एक समान स्नेह की दृष्टि से देखते हैं। उनका कोई शत्रु नहीं होता है। वह ज्ञान, विज्ञान तथा गहन वैराग्य भाव से ओत-प्रोत होते हैं। वह नम्र होते हैं। दोनों व निस्सहायों के प्रति उनमें

अपार दया होती है । वह यश-अपयश, सम्मान-असम्मान से असम्बद्ध होते हैं । वह सदा दूसरों की सेवा में रुचि लेते हैं । वह स्वप्न में भी स्वार्थ से प्रेरित नहीं होते । उनके कर्म छल रहित होते हैं । उनके हृदय सदा शीतल और शांत होते हैं । वह त्याग करने के अवसरों की प्रतीक्षा में रहते हैं । वह प्रतिपल आनन्दमय रहते हैं । उनके लिए प्रशंसा और लांछन एक समान होते हैं ।

अब मैं तुम्हें असंतों के लक्षण बताऊँगा । सुनो ! तुम्हें उनकी संगति से बचने के लिए सभी प्रयत्न करने चाहिए । उनके सानिध्य से तुम्हें कष्ट भोगने पड़ेंगे । दूसरों की समृद्धि को देखकर उन्हें ईर्ष्या होती है । वह दूसरों की निन्दा करने में ऐसे प्रसन्न होते हैं मानों उनका भाग्य खुल गया हो । सज्जनों के छः शत्रु – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और घृणा असंतों के मित्र होते हैं । असंत इनके आदेशानुसार ही कार्य करते हैं । उनमें दया और दानशीलता का अभाव होता है । वह किसी कारण या उत्तेजना के बिना ही दूसरों से लड़ते हैं । वह अपने हितैषियों के प्रति भी द्वेष भाव रखते हैं । उनके कर्म झूठे होते हैं । मोर अति मोहक पक्षी है । इसकी कुहुक अति कर्णप्रिय होती है । किन्तु यह सर्प को मार डालता है । इसी भाँति दुष्ट व्यक्ति दूसरों को पीड़ा देने को उत्सुक रहते हैं । वे परस्त्री की आकांक्षा करते हैं । वह दूसरों पर कलंक लगाने में आनन्दित होते हैं । वह बुराइयों पर निर्भर करते हैं । उनका मन सदा कुत्सित रहता है ।

वह निम्नतम् मनुष्य होते हैं । उन्हें प्रतिफल का भय नहीं होता । वह दूसरों की उन्नति को देख और सुनकर इतने ईर्ष्यालु हो जाते हैं कि उनके सिर में असहनीय पीड़ा होने लगती है । दूसरों को संकट में देखकर वह प्रसन्न होते हैं । दूसरों को दुःखी देखकर वह ऐसे हर्षित होते हें मानों उन्हें राज्य मिल गया हो । वह अभिमानी होते हैं । उन्हें स्वप्न में भी दूसरों की सहायता करने का विचार नहीं आता । उनके हृदय काम, क्रोध और अन्य विकारों के जन्मदाता होते हैं । वे माता-पिता, गुरु तथा बड़े जनों का आदर नहीं करते । उनमें महापुरुषों तथा ईश्वर के प्रति अरुचि होती है । वह जड़ बुद्धि होते हैं । उनका आचरण निन्दनीय होता है । कलियुग में ऐसे असंत भारी संख्या में देखे

जा सकते हैं ।

भइया ! दीनों की सहायता करना सर्वोच्च धर्म है और दूसरों को पीड़ा सबसे बड़ा अधर्म है । वेद और पुराण की शिक्षा का यही सार है । सर्वत्र यही सज्जनों का आदर्श है । जो व्यक्ति मानव जीवन पाने पर भी दूसरों को पीड़ा व दुःख देने में संलग्न रहते है ।, वह क्षुद्र पाशविक स्तर के होते हैं और उन्हें पशुओं के समान ही जन्म लेना व मरना पड़ता है, या पुनः मानव जन्म मिलने पर वह अज्ञान से अन्धे हो फिर बुरे कर्म करते हैं । ईश्वर उन्हें शिक्षित करने हेतु बार-बार जन्म-मरण के भंवर में डालता है और सुख-दुःख के अनुभव कराता है ।

भरत तथा अन्य उपस्थित जन यह स्पष्टीकरण सुनकर समभाव को प्राप्त हो गए । उनके हृदय प्रेम से आप्लावित थे । उन्होंने राम को दण्डवत् प्रणाम कर उनकी दया के प्रति आभार प्रकट किया क्योंकि उनकी प्रत्येक शंका का स्पष्टीकरण हो गया था । औरों की अपेक्षा हनुमान को सर्वाधिक हर्ष हुआ । तदुपरान्त राम अपने भाइयों तथा हनुमान सहित महल को लौट गए । उपदेश देना और शासन के कर्त्तव्यों का पालन करना दैनिक क्रिया बन गया । एक दिन राम ने इच्छा प्रकट की कि सभी अयोध्यावासी गुरुओं तथा ब्राह्मणों सहित महल में एकत्रित हों । वह सभी दरबार कक्ष में इकट्ठे हुए और उन्हें आरामदायक आसन दिए गए । राम ने कक्ष में प्रवेश किया और उन्हें इस प्रकार संबोधित किया–

मानव जीवन मुक्ति द्वार की कुंजी है । यह हमें साधना करने तथा उससे लाभान्वित होने के अनेक अवसर प्रदान करता है । मानव देह को इन्द्रिय भोग में लिप्त होने को साधन न समझो । यह सभी सुख क्षणभंगुर है । यह तुम्हें जन्म और मरण के बंधन में बांधते हैं । अतः यह सुख केवल दुःख ही लाते हैं । केवल मूर्ख ही इन्द्रिया भोगों में लिप्त रहते है । ऐसे सुख तो मनुष्य के लिए विष के समान है । अमृत के होते हुए गरलपान करना क्या उचित है? विष की कामना करने वाले सज्जनपुरुष नहीं हो सकते ।

वह तो उन मूर्खों के समान हैं जो चिन्तामणि रत्न को त्याग कर

कांच के मोती को महत्व देते हैं । मानव देह धारण करने पर भी यदि कोई मनुष्य संसारसागर को पार नहीं कर सकता तो वह वास्तव में भाग्यहीन एवं जड़ बुद्धि है । वह आत्मघाती और आत्मोन्नति का शत्रु है । अतः मानव रूप में जन्म लेने वाले प्राणियों को यह अनुभूति करनी चाहिए कि परमात्मा प्रत्येक के हृदय में आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है और प्रत्येक को ईश्वरस्वरूप मानकर उसकी सेवा करना ही ईश्वर की यथोचित पूजा है । सम्पूर्ण मन सहित ईश्वर के आदेशों का पालन करो । सभी कर्म ईश्वर के प्रति समर्पण रूप में करो ।

अपना प्रवचन जारी रखते हुए राम ने कहा, ''मेरी प्रजा, सुनो ! मैं तुम्हें एक ऐसा महत्वपूर्ण सत्य बताना चाहता हूँ जो तुम साधारणतः स्पष्ट रूप में नहीं समझते हो । यह विश्वास रखो कि परमात्मा अद्वैत है । नाम और रूप अलग-अलग है लेकिन दिव्यात्मा एक ही है । यह दिव्यात्मा सभी में समान रूप से विद्यमान है ।''

राम राज्य में कोई भी निर्धन, दुःखी, दलित, कुरूप नहीं था । कोई भी व्यक्ति अपने गर्व द्वारा दूसरों को पीड़ा नहीं देता था । लोग परस्पर ईर्ष्या नहीं करते थे । सभी लोग आत्मिक ज्ञान में निपुण थे । सभी मनुष्य धर्म का पालन व उसकी रक्षा करने को तत्पर थे । सभी लोग दयालु थे और दूसरों की सेवा करने को तैयार रहते थे । प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के सद्‌गुणों की प्रशंसा करने को उत्सुक रहता था । किसी के मन में अहंकार का कोई स्थान नहीं था ।

अयोध्या नगरी में प्रत्येक दिन एक नवीन पर्व होता था और हर पर्व पर नूतन मनोरंजन होता था । प्रतिदिन राम बहुमूल्य वस्तुओं का दान करते थे । ऐसा विधान था कि कोई भी किसी की निन्दा या अपमान न करे । कोई भी कटु वचन न बोला जाए । हर घर में प्रतिदिन वेदों का पाठ होता था । कोई भी जाति या वर्ग दूसरी जाति को निम्न या हीन नहीं मानती थी । सभी जातियाँ निज परम्पराओं एवं निर्धारित नियमों का पालन करती थीं । इसी कारण राम के हृदय में प्रजा के प्रति अत्यंत दया एवं स्नेह था । रामराज्य की पतिव्रता स्त्रियों की

श्रद्धा-भक्ति को देखकर देवतागण भी चकित थे। पति भी ऐसी सेवाओं के पात्र थे। उनसे विवाह करने वाली स्त्रियाँ कदापि दुःखी नहीं थी। पति-पत्नी एक दूसरे को अपना अर्द्धांग मानते थे और इस प्रकार वह एक-दूसरे के परम हितैषी बनकर जीवनयापन करते थे।

राम राज्य में किसी ने भी किन्हीं परिस्थितियों में भी असत्य का आश्रय लेने का प्रयन्त्न नहीं किया। बालक तथा बालिकायें अपने माता-पिता तथा गुरुओं की आज्ञा और आदेशों का पालन करते थे। प्रत्येक व्यक्ति स्वर्ग में देवराज इन्द्र के सामन प्रसन्न था। हर घर में धन के देवता कुबेर के समान अपार धन-धान्य था। चकोर पक्षी ऐसे प्रमुदित थे मानो वे शरद ऋतु के चन्द्रमा को निहार रहे हों। स्त्रियाँ अपने घरों के दरवाजों के पीछे से राम को देखकर अति हर्षित होती थीं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न श्री राम के दिव्य सौन्दर्य को नेत्रपान कर निरन्तर पुलकित होते थे। राम के राज्यकाल में सम्पूर्ण अयोध्या दिव्य आलोक से पूर्ण थी। उसमें पाप का कोई चिह्न भी नहीं था। ऋषि-मुनि घने जंगलों में भी निर्भय होकर घूमते थे। राजा एवं प्रजा का पारस्परिक प्रेम दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। वसुन्धरा प्रेम व प्रकाश से प्रदीप्त थी।

राम ने पुत्रों को अपने पास बुलाकर उन्हें राज्य के शासन की विधि और प्रणालियों के विषय में बताया। फिर उन्होंने उन्हें औपचारिक रूप से शासन की बागडोर सौंप दी। उन्होंने भरत के पुत्र तक्ष को दक्षिणी साम्राज्य दिया। उनके दूसरे पुत्र पुष्कर को पुष्कर राज्य दिया। उन बालकों ने उन राज्यों के अवशिष्ट राक्षसों का नाश कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। चित्रकेतु तथा चित्रांगद नामक लक्ष्मण के पुत्र धुरन्धर योद्धा, शूरवीर तथा युद्ध में निपुण थे। उन्हें पश्चिमी क्षेत्र में भेजा गया जहाँ उन्होंने निशाचरों का नाश कर वहाँ राज्य किया। राम ने उन्हें उन दो भिन्न-भिन्न नगरों का राज्य प्रदान किया जो बाद में उनकी राजधानियाँ बन गईं। उन्होंने सभी पुत्रों को राजनीति तथा प्रशासन सम्बन्ध विषयों पर अमूल्य उपदेश दिया। कुश को अयोध्या का राज्य सौंप गया। लव को सम्पन्न उत्तरी राज्य दिया गया। लवपुर (आधुनिक लाहौर) को उसकी राजधानी निर्धारित किया

गया । राम ने सभी को भरपूर मात्रा में गउएं, भूमि, वस्त्र और धन दान में दिए ।

वस्तुतः ''रामचरितमानस'' लंकाकांड पर और वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड पर ही समाप्त हो जाते हैं । इन ग्रंथों में उत्तर कांड प्रक्षिप्त भाग है जोकि बाद में जोड़ दिया गया है । जैसे स्वामी विद्यानंद सरस्वती अपनी पुस्तक रामायण ''भ्रान्तियाँ और समाधान'' में लिखते हैं–

इस सबके लिए न राम दोषी है और न वाल्मीकि । इसके लिए दोषी है वह जिसने उत्तरकांड लिख कर वाल्मीकिकृत रामायण में उसका प्रक्षेप किया और दोषी हैं वे लोग जो उत्तरकाण्ड को वाल्मीकिकृत रामायण का भाग मानते हैं । सीता वनवास की घटना सर्वथा कपोलकल्पित है । –पृ० 39

फिर भी मुझे यह ग्रंथ अति प्रिय है । क्योंकि इसमें हमारे महान् पूर्वजों की गौरवगाथा है । इसमें वैदिक धर्म की क्रियात्मक व्याख्या है । श्रीराम का महान् चरित्र वैदिक धर्म की मुंह बोलती तस्वीर है । वैदिक धर्म ही मानव धर्म है । जैसे रहीमखान लिखते हैं–

रामचरितमानस विमलसमान जन जीवन प्रान ।
हिन्दुअन को वेद समान और मुसलमान को क़ुरान ।।

वाल्मीकि जी के शब्दों में–

इस पृथ्वी पर जब तक नदियों और पर्वतों की सत्ता रहेगी तब तक संसार में रामायणकथा का प्रचार होता रहेगा ।

–बालकाण्ड 2-36

3. रामचरितमानस का साहित्यिक सौंदर्य

प्रस्तुत ग्रंथ हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपरि महाकाव्य है। इसलिये इसको आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नवरसों का राम रसायन, ग्रियर्सन ने उत्तरी भारत का बाइबल, महात्मा गांधी ने अद्वितीय ग्रंथ की सम्मानित उपाधियों से विभूषित किया है। इसमें महाकाव्य के समूचे तत्त्वों कथानक, पात्र व चरित्रचित्रण, कथोपकथन, देशकाल, वातावरण, भाषाशैली आदि के दर्शन होते हैं। अतः यह एक विशिष्ट धर्मग्रंथ हैं, विशिष्ट आचारग्रंथ है, विशिष्ट समाजग्रंथ है एवं विशिष्ट भक्तिग्रंथ है जो श्रेष्ठ काव्य के माध्यम से महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसलिये डा० उदयभानु सिंह ने इसको एक भव्य महाकाव्य के नाम से पुकारा है।

(1) सांस्कृतिक दृष्टिकोण :–

''रामचरितमानस'' भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल उदाहरण है। इसमें आदर्श परिवार, आदर्श दम्पति, आदर्श माता-पिता, आदर्श भाई आदि के दर्शन होते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि व्याघ की नाईं।।
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।।
अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोईं। ताहि बधें कछु पाप न होई।।

–किष्किंधाकाण्ड 8.3.4

जिस समय बाली एवं सुग्रीव में युद्ध हुआ। दोनों भाई का रूप एक जैसे होने के कारण श्रीराम बाली को नहीं मार सके फिर पहचानने के लिए श्रीराम ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाल दी। श्रीराम ने जब दोनों भाई फिर से युद्ध कर रहे थे। वृक्ष की आड़ में छिप कर

बाली पर बाण चला दिया। बाली पृथ्वी पर गिर पड़ा और श्रीराम की ओर देखकर बोला।

हे गोसाई! आपने धर्म की रक्षा के लिये अवतार धारण किया परन्तु मुझे (बाली) को व्याध की भाँति छिपकर मारा है। इस प्रकार मैं आपका शत्रु सिद्ध हुआ और इसके विपरीत सुग्रीव प्यारा। हे नाथ! आपने मुझे किस दोष के कारण मारा? इसका उत्तर देते हुए श्रीराम ने बाली को उपदेश देते हैं–हे दुष्ट! सुन छोटे भाई की पत्नी, बहन, पुत्रवधु और कन्या ये चारों समान हैं। इनको जो कोई कुदृष्टि से देखता है उसे मारने में कोई पाप नहीं लगता है।

जैसे चाणक्य ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक ''चाणक्यनीति'' में लिखा है–

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति सः पंडितः।।

माता के समान परस्त्री को, मिट्टी के ढेले के समान दूसरे के धन को और अपने समान सभी प्राणियों को जो देखता है, वही पंडित है।

(2) धार्मिक दृष्टिकोण :–

शिव पार्वती से कहते हैं कि वेद शास्त्रों में भगवान् के सुन्दर विस्तृत एवं निर्मल चरित्रों का उल्लेख है। परन्तु भगवान् के अवतार के कई कारण है जिन्हें कोई भी नहीं जान सकता। वस्तुतः भगवान् के मुख्य अवतार धारण का कारण निम्नलिखित है।

जब जब होइ धरम कै हानी। बढहिं असुर अधम अभिमानी।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

–बालकाण्ड (120.3.4

जब जब इस संसार में धर्म की हानि होने लगती है और राक्षसों,

पापियों और अभिमानियों की संख्या बढ़ने लगती है। उस समय भगवान् सज्जनों के दुःख दूर करने के लिए अनेक शरीर धारण करके अवतार लेते हैं। वस्तुतः तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे न कि प्रभुभक्त। इस कारण उन्हें सारा संसार ही राममय नजर आता था और राम ही एक मात्र उनके इष्ट थे। यहाँ तक कि एक बार तुलसीदास अपने अन्य भक्तों के साथ मथुरा के एक मंदिर में गये वहाँ उन्होंने श्री कृष्ण की मूर्ति को देखा और उनका हृदय पुकार उठा–

कर मुरली कटी काछनी भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब निवै जब धनुष बाण हो हाथ।।

श्री कृष्ण की मूर्ति जिस के हाथों में बांसुरी थी और कमर में धोती बांधी हुई थी को देखकर कहा कि भले ही आप भगवान् हो परन्तु तुलसी तभी आपके आगे सिर झुकायेगा यदि आपके हाथ में धनुष बाण हो। कहने का भाव यह है कि तुलसी ने कृष्ण की प्रतिमा के आगे सिर झुकाने से इन्कार कर दिया क्योंकि तुलसीदास ने श्रीराम के प्रति सम्पूर्ण समर्पण कर दिया था।

शिव पार्वती से कहते हैं कि जिनकी कृपा से सारे भ्रम मिट जाते हैं वही कृपालु श्रीराम हैं। जिनका आदि एवं अंत कोई भी नहीं जानता। परन्तु वेदों ने उस परमेश्वर का वर्णन इस प्रकार किया है। अतः प्रभु को तुलसीदास ने निर्गुण व सगुण का सुन्दर समन्वय स्वीकार किया और दोनों में कोई भी भेद नहीं माना। जैसे–

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।

–बालकाण्ड 117.3.4

वह प्रभु बिना पाँव के चलता है, बिना कान के सुनता है, बिना हाथ के अनेक प्रकार के कार्य करता है, बिना मुँह के समस्त रसों का

आनन्द लेता है और बिना ही वाणी के अत्यन्त योग्य वक्ता है। वह तन के बिना ही स्पर्श करता है। बिना आँखों के देखता है एवं बिना नाक के समस्त गंधों को सूँघता है। उसकी करनी सभी प्रकार से अलौकिक है और उसकी महिमा अकनीय है।

अतः इसको धार्मिक महाकाव्य की संज्ञा से पुकारा जाना उचित है। इस प्रकार राम की विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान इसमें आदर्शवादी एवं परंपरागत मान्यताओं के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है। अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का यह कथन उचित ही है–

आज राजा से रंक तक के घर में गोस्वामी जी का रामचरितमानस विराज रहा है। और प्रत्येक प्रसंग पर इनकी चौपाइयाँ कही जाती है।

(3) सामाजिक दृष्टिकोण :–

तुलसीदास मानस के आरंभ में ही सत्संगमहिमा पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं :–

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला।।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई।।
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं।।

–बालकाण्ड 2.4.5

सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और प्रभुकृपा के बिना सत्संग की प्राप्ति नहीं होती। सत्संग आनंद एवं कल्याण का मूल है। इसकी प्राप्ति ही फल है और सब साधनों को तो फूल समझना चाहिये। सत्संग के प्रभाव से दुष्ट व्यक्ति भी सुधर जाते हैं जैसे पारसमणि के स्पर्शमात्र से लोहा भी सोना हो जाता है। यदि दुर्भाग्यवश सज्जन कुसंग में पड़ जाते हैं तो वे वहाँ भी साँप की मणि के समान अपने गुणों का ही प्रकाश करते हैं।

(4) राजनीति दृष्टिकोण :–

प्रस्तुत कृति में आदर्श राजा एवं राज्य की स्थापना के दर्शन होते हैं जिसका मुख्योद्देश्य मानवकल्याण है । जैसे जब श्रीराम को 14 वर्ष के वन का आदेश हो जाता है तो राम अपनी माता कौशल्या से कहते हैं ।

पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ।

–अयोध्याकाण्ड 52.3

हे माता ! पिता जी ने मुझको वन का राज्य दिया है जहाँ सब प्रकार से मेरा बड़ा काम बनने वाला है ।

(5) समन्वय भावना :–

अलोच्य कृति में निगुण व सगुण का समन्वय, अद्वैत व द्वैत का समन्वय, भोग व त्याग का समन्वय, विद्या व अविद्या का समन्वय, पुरुषार्थ एवं प्रारब्ध का समन्वय किया गया है । अतः हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उचित ही कहा है–

उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है । मानस शुरू से आखिर तक समन्वय काव्य है ।

(6) प्रमुखप्रतिपाद्य :–

प्रस्तुत महाकाव्य का लक्ष्य महान है । जैसे–

कीरति, भनिति, भूति भलि सोई । सुरसरि सम कहँ हित होई ।

–बालकाण्ड 13 (क) 5

तुलसीदास रामचरतिमानस के आरंभ में कहते हैं कि कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही कल्याणकारी है जो गंगामाता की भाँति सर्वकल्याणकारी हो ।

(7) अभिव्यक्ति सौंदर्य : –

तुलसीदास ने मानस में साहित्यिक अवधी का प्रयोग किया । इसलिये मानस को अवधी भाषा का अनूठा महाकाव्य माना जाता है ।

इसका आशय बस इतना ही है कि तुलसी भाषा लिखने में सर्वश्रेष्ठ एवं समर्थ कवि हैं । इनकी शैली रोचक एवं प्रभावोत्पादक है । मानस में छंद अलंकारों की छटा के दर्शन होते हैं । इसमें उपमायें वीचियाँ हैं, चौपाइयाँ कमल हैं, युक्तियाँ मुक्त शक्तियाँ हैं । प्रस्तुत ग्रंथ में सभी प्रकार के छंद मानसरोवर की सुगंध हैं एवं भक्त जन मंडराने वाले भ्रमर हैं । उत्प्रेक्षा अलंकार का एक उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत है–

लताभवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ ।।

–बालकाण्ड दोहा 232

राम और लक्ष्मण दोनों भाई लताकुंज से बाहर आये वे उस स्थान से ऐसे निकले मानो दो निर्मल चन्द्रमा बादलों के पर्दे को हटाकर आकाश में चमक गये हों ।

''रामचरितमानस'' मानवजीवन का महाकाव्य है । इसके द्वारा गोस्वामीजी ने हमारी आध्यात्मिक एवं भौतिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है । प्रस्तुत कृति ने अपने युग में एक महान् कार्य किया ही है । वह अब भी उतनी ही मूल्यवान एवं श्रेष्ठ कृति है जितनी तुलसी के काल में थी । वस्तुतः यह भारतीय ज्ञानराशि की एक अनुपम रश्मि है । यही गुण इसे महाकृति की पदवी से विभूषित करता है । विवेच्य कृति के कारण तुलसी कर्म, ज्ञान एवं भक्ति के प्रयागराज बन गये । इनका मानस जन-जन का कण्ठहार बन गया । इसको हिन्दू जाति का सर्वप्रिय धार्मिक ग्रंथ माना जाता है । इसी कारण घर-घर में तुलसी का वास है और वे समूचे समाज द्वारा पूजे जाते हैं । तुलसी के कारण ''रामचरितमानस'' अमर कृति बन गई और ''रामचरितमानस'' ने तुलसी को सदा-सदा के लिये अमर कर दिया

है । स्वामी शिवानंद जी ने अपनी पुस्तक "Bliss Divine" में सत्य लिखा है :–

The Ramayana is a marvellous book which contains the essence of all vedas and all sacred scriptures. P. 454

रामायण एक विलक्षण ग्रंथ है जिस में वेदों एवं सारे धार्मिक ग्रंथों का सार निहित है ।

किसी अंग्रेज़ लेखक ने इसके विषय में लिखा है :–

दुनियाँ में बाइबल के पश्चात् ''रामचरितमानस'' ही ऐसा ग्रंथ है, जिसका बहुत संख्या में लोग दैनिक पाठ करते हैं ।

4. रामायण सत्य की कसौटी पर

''रामचरितमानस'' हिन्दी काव्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। परन्तु इसमें भी कुछ असत्य, अतिशयोक्तिपूर्ण, प्रक्षिप्तभाग की मिलावट कर दी गई हैं। इसी कारण इसकी कुछ मुख्य घटनाओं पर पाखंड-खंडिनी पताका लहराकर इसको अधोलिखित पंक्तियों में सत्य एवं तर्क की कसौटी पर कसने का प्रयास किया गया है।

(1) सीता की माता का नाम सुनैना धरणि था, धरणि पृथ्वी को भी कहते हैं। बस, लोगों ने भूमि से ही सीता का जन्म करा दिया और मृत्युकाल का भी ऐसा ही मनगढंत कथानक बना लिया कि सीता पृथ्वी के पेट में ही समा गई। इस मिथ्यासिद्धांत से न केवल ईश्वरीय नियम सृष्टिक्रम और वैदिक सिद्धान्त को धब्बा लगता है इतिहास की जड़े भी खोखली हो जाती हैं और आर्य जाति के अपूर्व आत्मबलिदान एवं पौरुष से निर्मित रामायण के समान महान् इतिहास उपन्यास जैसे लगते हैं। इसके विषय में ''अद्‌भुत रामायण'' का एक उत्कृष्ट उदाहरण द्रष्टव्य है :–

धरिण तनयया यद्‌भीम कृत्यं कृतमिह मनसातच्चिन्तयते द्विजेन्द्र।

–सर्ग 23 श्लोक 72

धरणि रानी की सुता (सीता) ने पृथ्वी पर अद्‌भुत कार्य किये।

इसी प्रकार तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है :–

तात जनक तनया यह सोई। धनुष यज्ञ जेहि कारण होई।

तनया अर्थात् शरीर से उत्पन्न है। स्पष्ट है कि सीता के पिता महाराजा जनक और माता महारानी धरणी थी। इन्हीं का दूसरा नाम सुषैणा था।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि सीता के जन्म के विषय में भ्रम का मुख्य कारण क्या था? सीता क्योंकि हल की पृथ्वी पर खिंची रेखा का

ही नाम है । इसी को सिया नाम से भी पुकारा जाता है । इससे भी सीता और सिया यह नाम मान लिया और पृथ्वी से उत्पन्न होने की गलत धारणा लोगों द्वारा बना ली गई ।

(2) ''रामचरितमानस'' में वर्णित धनुष यज्ञ कौन सा यज्ञ है? इसका विधान किस गृह्यसूत्र, स्मृति अथवा ब्राह्मण ग्रंथ में नहीं है? तुलसी ने श्रीराम के सभी 'कर्म' वेदानुकूल बताये हैं । कथा कोई रामकथा विशेषज्ञ बता सकता है कि धनुष यज्ञ का वर्णन वेद-वेदांग में है? जैसे धार्मिक ग्रंथों में सर्वजित यज्ञ, अश्वमेघयज्ञ आदि का विधान है वैसा धनुषयज्ञ किसी भी ग्रंथ में नहीं है ।

क्या बहुत से व्यक्तियों को एकत्रित करके किसी धनुष को उठाने का प्रयत्न ही धनुषयज्ञ है? इसलिये सब प्रकार की भार उठाने की प्रतियोगिताओं को यज्ञ के नाम से पुकारना चाहिए । वस्तुतः यह तुलसीदास की अपनी खोज थी। बाल्मीकि रामायण में नहीं तो धनुषयज्ञ शब्द का उल्लेख है और न ही सीता के विवाह को स्वयंवर कहा गया है । यहाँ तक कि सीता के विवाह पर उसकी माता रोती एवं विलाप करती थी। इस विवाह को स्वयंवर के नाम से कैसे पुकार सकते हैं? स्वयंवर वह होता है जहाँ पर कन्या स्वयं अपनी इच्छा से वर को जयमाला पहनाती है । परन्तु इसके विपरीत सीता के विवाह में जयमाला शतानंद पुरोहित की आज्ञा से पहनाई गई थी। यदि जयमाला सीता ने अपनी इच्छा से पहिनाई होती तो धनुष तोड़ने की आवश्यकता ही न पड़ती ।

यह सत्य है कि विवाह के समय धनुष तोड़ने की शर्त थी । राजा भी एकत्रित हुये थे । यज्ञ भी हुआ था । जयमाला भी श्रीराम को पहनाई गई थी । परन्तु इसको हम न धनुषयज्ञ और न स्वयंवर कह सकते हैं । परन्तु आश्चर्य की बात है कि अब भी रामकथा करने वाले पंडित इसे इन्हीं नामों से पुकारते हैं ।

(3) तुलसीदास ने जहाँ तहाँ अवसर निकालकर दहेज प्रथा की पुष्टि करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी। जैसे शिवविवाह के समय पार्वती के दहेज का प्रसंग देख लें अथवा रामविवाह समय सीता के दहेज के विस्तृत विवरण का वर्णन ''रामचरितमानस'' में है। राम-विवाह के दहेज का विवरण देते हुए तुलसीदास कहते हैं कि अनगिनत बैलों और कहारों पर लाद-लाद कर सारी खाने की सामग्री भेजी गई। 1,00,000 घोड़े, 25,000 रथ, 1000 हाथी जो सब के सब नख से शिख तक सजे हुए थे। गाड़ियों में भरकर सोना, वस्त्र, हीरे, जवाहरात, भैंसे, गायें आदि दहेज का सामान राजा जनक ने अयोध्या भेजा।

(4) लक्ष्मण ने श्रीराम के साथ वनगमन के प्रकरण में कवि ने माता सुमित्रा से आज्ञा लेने की बात लिखी है। परन्तु आदि कवि महर्षि बाल्मीकि भी और तुलसीदास भी सती शिरोमणि त्यागमूर्ति लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला को सर्वथा भूल ही गये हैं। वस्तुतः यह एक बड़ी त्रुटि रह गई है। उर्मिला का त्याग सर्वोपरि है। जैसे आचार्य श्री सुदर्शन ''संगीतमय रामकथा'' में लिखते हैं –

उर्मिला का जीवन एक त्याग का जीवन है। अगर सच पूछा जाए तो मानस में उर्मिला ने जो त्याग किया है, वैसा त्याग किसी दूसरे ने नहीं किया है। –अरण्यकाण्ड पृ० 277

(5) रावण बाली से युद्ध में पराजित होकर 6 महीने तक उसकी क़ैद में रहा था। परन्तु आलंकारिक भाषा में इसी को काँख में रखना कहा गया है।

(6) श्रीराम को एक ऐसे देशद्रोही की परमावश्यकता थी जो रावण की सारी आंतरिक बातों की सूचना उन्हें दे सके। विभीषण तो बिना बुलाये आया था। भला श्रीराम उसे क्यों न स्वीकार करते? एक

कुशल राजनीतिज्ञ की भाँति उन्होंने विभीषण को स्वीकार कर लिया, उसे गले लगाया और उसे लंका का राजा बना देने का प्रलोभन देकर अपना काम बनाया। लंका के सिंहासन का लोभी विभीषण स्वयं ही तो शरण में आया था। उसने लंका की सारी गुप्त जानकारी राम को दे दी।

(7) बाल्मीकि रामायण, अध्यात्मिक रामायण, रघुवंश आदि अनेकों प्रमाणों से स्पष्ट है कि रावण से युद्ध करने वाला और माता सीता की रक्षा करने वाला जटायु पक्षी नहीं था। अपितु वह महाराज दशरथ का सहपाठी था। अरुण ऋषि का पुत्र कश्यप गोत्री सम्पाति का छोटा भाई विमान विद्या आदि में निपुण वानप्रस्थी ब्राह्मण था। इसके विपरीत जटायु को पक्षी मानने वाले यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि यदि जटायु मनुष्य था तो विभिन्न ग्रंथों में उसके लिये जटायु, गृध, लूनपक्ष आदि शब्द क्यों आये हैं, जोकि प्रायः पक्षी विशेष के वाचक हैं। युद्ध में शस्त्रों को स्थान पर तुण्ड (चोंच) से प्रहार क्यों लिखा है?

ये जो नाम दिये गये हैं उसके गुणों को देखकर यौगिक भाव से दिये गये हैं। वस्तुतः जटायु का अर्थ है –बड़ी आयु वाला। क्योंकि वह प्रसिद्ध योद्धा था। इसी कारण उसको गृधराज के नाम से भी पुकारा गया। रावण ने उसकी भुजा काटी। अतः उसे राम ने लूनपक्ष के नाम से पुकारा। तुंड चोंच का नाम नहीं परन्तु उसके शस्त्र का नाम है जिससे ये रथ के अंदर बैठे हुए शत्रु के अंगों पर प्रहार कर सकता था। अतः जटायु पक्षी नहीं था अपितु एक वीर योद्धा था। वह मरीचि वंश का काश्यप गोत्री, अरूण राजा का छोटा पुत्र था। उसकी माता का नाम श्येनी, बड़े भाई का नाम सम्पाति था। उसका वर्ण ब्राह्मण, आश्रम वानप्रस्थ और इष्टमित्र एवं सहपाठी महाराजा दशरथ थे।

(8) रावण के न दस सिर और बीस भुजाएं थी परन्तु कवियों ने उसकी युद्ध शक्ति को देखकर ऐसा कहा होगा जैसे कि राम के पिता

को दशरथियों के समान बल वाला देखकर दशरथ, दतात्रेय को तीन सिर, ब्रह्मा को चार मुख, शिव को पाँच मुख, सोम कार्तिक को छः मुख वाला इनकी अपारशक्ति के कारण ही इन्हें कहा गया। परन्तु रावण की आकृति मनुष्य के समान थी। इसी कारण वह सीता विवाह में गया था और वन में भी उसने सीता हरण किया था। रावण के दस सिर बनावटी थे। क्योंकि युद्ध काल में शत्रु को धोखा देने के लिए ऐसा प्रयोग किया करता था ताकि शत्रु वास्तविक सिर को न काट सके जोकि उनके नीचे छिपा रहता था जिसके काटने का भेद विभीषण ने राम को बतलाया था। वे कृत्रिम सिर खण्ड और स्प्रिंग के बने हुए होंगे जिससे एक के कट जाने पर दूसरा उनके स्थान पर उभर आता था। दूसरे यह बात कि रावण के दस सिर थे यह सृष्टिक्रम के विरुद्ध भी है।

(9) ''रामचरितमानस'' का अधिकतर भाग पूर्ववर्ती संस्कृत, प्राकृत एवं अवधी साहित्य से संकलित व अनुदित है, इसमें मौलिकता नगण्य है। अतः यह सोचना अवश्य हो गया है कि क्या ''रामचरितमानस'' एक मौलिक काव्यकृति है अथवा मात्र पौराणिक व धार्मिक संकलन है? इस कृति का श्रेय केवल तुलसीदास को मिलना चाहिये अथवा उनके पूर्ववर्ती कवियों एवं आचार्यों को, क्योंकि मानसकार ने दो ही कार्य किये हैं एक तो विभिन्न संस्कृत राम काव्यों में से अपनी पसंद के पदों का संग्रह और दूसरे उनका अनुवाद।

अलंकारों उपमाओं एवं वार्तालाप की शैली प्रसंग विशेष के प्रभावोत्पादक शब्दों, नये-नये कथा प्रसंगों आदि के आधार पर ही किसी महाकाव्य की मौलिकता का परीक्षण किया जाता है क्योंकि मूल कथानक तो प्रत्येक महाकाव्य का रचयिता कहीं न कहीं से ग्रहण करते हैं। तुलसी ने अपनी आलोच्य कृति में अन्य कृतियों की मूल उपलब्धियों को लिया है। अतः प्रस्तुत कृति सीधे ही साहित्यिक तस्करी की वस्तु बन कर रह गई है। ऐसी अवस्था में तुलसी को मानस

का लेखक कहा जाये अथवा संपादक या अनुवादक ।

हम देखते हैं कि तस्करी सिद्धांत के अनुसार वस्तु जहाँ छिपाई जाती है खोजने वाले को गड़बड़ा कर उससे दूसरी ओर खोजने के लिए विवश कर दिया जाता है । तुलसी ने आधार लिया अध्यात्म रामायण का और वंदना द्वारा पाठक को भ्रमित कर दिया गया, बाल्मीकि रामायण की ओर, तुलसी ने अलंकार, उपमाएँ, छंद आदि शैली अपनाई हनुत्राटक, स्वयंभूरामायण, आनन्दरामायण, प्रसन्नराघव की । इसके विपरीत नाम लिया नाना पुराण निगमागम का । इसी कारण शताब्दियों के उपरांत भी साहित्यिक तस्करी का पता न चल सका । अतः साहित्य का यह गंभीर अपराध है और तुलसी इसके अभियुक्त हैं ।

(10) संस्कृत साहित्य की चुराई गई उक्तियों को पुनः से इसी भाषा में लिखने से भला कौन उसकी स्तुति करता इसी कारण तुलसी ने लोकभाषा का आश्रय लिया क्योंकि पाठक साधारणतः संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ थे । अतः वहाँ पर यह मिलावटी माल ऊँचे दाम पर बिक सकता था । अतः तुलसी को उस वर्ग में लोकप्रियता प्राप्त हो गई । परन्तु वे विद्वानों का श्रेय एवं आदर न पा सके। जैसे ''रामचरितमानस'' में हरि के अवतार का कारण बताते हुए शिव पार्वती से कहते हैं –

जब जब होइ धरम कै हानी । बढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।

–बालकाण्ड 120.3.4

जब-जब धर्म का पतन होता है और नीच, अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं । तब-तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के शरीर धारण करके सज्जनों के दुःखों को दूर करते हैं । इसी प्रकार गीता में भी श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं –

परित्राणाय साधूनाम विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।। –4.8

भक्त जनों की रक्षा के लिये दुष्टों के विनाश के लिये और धर्म को पुनः से स्थापित करने के लिये मैं युग युग में प्रकट होता हूँ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास ने श्रीराम को अवतार सिद्ध करने के लिये मानस में ऐसा किया । वस्तुतः यह अक्षरशः गीता के श्लोक का ही अनुवाद है ।

(11) वस्तुतः ''रामचरितमानस'' मध्यकालीन भक्तिधारा के अंतर्गत लिखे गये पुराणों की भाँति एक पुराण है । अंतर यही है वह उससे पूर्व के संस्कृत के पुराणों का हिन्दी रूपांतर ही है । परन्तु आलोच्यकृति में तुलसी ने बाल्मीकि रामायण वर्णित रामकथा को अनेक परंपरागत रूढ़ियों व उपकथाओं से अलंकृत करने का प्रयत्न किया है । इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रंथ के लेखन में स्कंद महापुराण व नारद महापुराण का सहारा भी लिया गया है । अतः रामधारीसिंह दिनकर ने अपनी कृति ''संस्कृति के चार अध्याय'' में सत्य लिखा है–

भक्तिकाल की रचनाओं में नवीनता और ताजगी जरूर है क्योंकि यह सर्वथा नूतन प्रयोग था । अगर बाकी तो ..... वह संस्कृत का अनुसरण मात्र है तो कवि और कलाकार पुरानी चीजों पर पच्चीकारी और नक्कासी के चमत्कार दिखलाने लगते हैं ।

(12) **सापत ताड़त परुष कहंता । बिप्र पूज्य अस गावहिं संता ।**

पूजिअ बिप्र सील गुन हीना । सूद्र न गुन गत ग्यान प्रबीना ।।

–अरण्यकाण्ड 33.1

ब्राह्मण चाहे शाप दे, चाहे मार डाले, चाहे गालियां दे वह फिर भी पूजनीय है । इसके विपरीत शूद्र चाहे गुणवान एवं ज्ञानी हो पूजनीय नहीं है ।

देखिए! श्रीराम के ये विचार है जिन्हें अंधविश्वासी हिन्दू भक्तिभाव से पढ़ते हैं और पढ़कर झूमते हैं। इन्हीं मानवविरोधी व अमानवीय विचारों का विष फैलाने के लिए ध्वनिवर्द्धक लगाकर अखंड पाठ करवाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त धर्मनिरपेक्ष पड़ोसियों की रातों की नींद हराम की जाती है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। अतः ऐसे विचार भारतीय विधान के विरुद्ध हैं।

(13) तुलसीदास ने अपने साहित्य में वेद के अतिरिक्त वेद के पर्यायवाची शब्द श्रुति एवं आगम-निगम को भी लिया है। ये तीन शब्द वेद के पर्यायवाची शब्दों का 209 बार – वेद 109 बार, श्रुति 66 बार और निगमागम 34 बार प्रयोग हुआ है। तुलसीदास ने वेद का अध्ययन नहीं किया था। परन्तु उन्हें वेदों की साधारण जानकारी थी जितनी कि लोगों को दूसरों से सुनकर हो जाती है। उनकी वेदों के प्रति श्रद्धा अवश्य थी।

(14) ''रामचरितमानस'' में देवताओं ने लगभग 60 बार पुष्पवर्ण की। इसके अतिरिक्त इसमें मुनि शब्द का 685, कोटि शब्द का 125 बार, संत शब्द का 100 और साधु शब्द का 61 बार प्रयोग किया गया। यहाँ तक कि मुनि और कोटि शब्द तो तुलसीदास के तकिया कलाम बन गये थे।

(15) मानस में अनेकों घटनाएँ कपोल कल्पित एवं अवैज्ञानिक है। जैसे–

भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरह न टारा।।

बालकाण्ड 250.1

10000 राजाओं ने एक बार धनुष को उठाना चाहा फिर भी वह नहीं उठाया गया।

इसी प्रकार कुम्भकर्ण ने जागते ही रावण से शराब के एक करोड़

घड़े और अनेक भैसें खाने के लिए मंगवाये । युद्ध में घायल लक्ष्मण को उठाने के लिए करोड़ो योद्धा लगे । यह सत्य न होकर कवि की कल्पना ही है । क्योंकि एक व्यक्ति के शरीर पर करोड़ों चीटियाँ भी नहीं आ सकती ।

इसी कारण स्वामी शिवानंद जी रामायण का यथार्थ चित्रण करते हुये अपनी पुस्तक "Bliss Divine" में सत्य ही लिखते हैं ।

The esoteric meaning of the Ramayana is this: Ravana respresents ahankara or egonism. His ten heads represents the ten senses. The city of Lanka is the nine-gated city of the physical body. Vibhishana corresponds in the intellect. Sita is peace. Rama is Jhana (wisdom) To kill the ten headed Ravana is to kill the egonism and the curb the senses. To recover Sita is to attain the peace which the Jiva (individual) has lost on account of desires. To attain Jhana is to have darsana of Rama or Supreme Self." P. 458

रामायण का गुप्त भाव यह है कि रावण अहंकार का प्रतीक है । उसके दस सिर, दस इन्द्रियों के प्रतीक हैं । लंका नगरी स्थूल शरीर के नवद्वार हैं । विभीषण बुद्धि के अनुरूप है । सीता शांति है । राम विवेक है । दस सिर वाले रावण को मारने का अर्थ है अहंकार को मारना और अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण करना । सीता प्राप्ति का भाव है शांति प्राप्ति जोकि व्यक्ति ने अपनी इच्छाओं के कारण खोदी है । विवेक प्राप्ति का भाव है राम दर्शन ।

निष्कर्षतः इतना ही कहना काफी होगा कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ एवं अपूर्ण है और फिर वह पूर्णतः सत्य एवं वेद की कसौटी पर कैसे उतर सकता है ? वस्तुतः यह तुलसीदास का महाकाव्य है जिसमें कल्पना और वेद के विरुद्ध बातों का होना स्वाभाविक है । इसके बिना कोई भी कवि महाकाव्य का सृजन नहीं कर सकता । इसमें

तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है कि अलोच्य कृति में संस्कृत भाषा के अनेकों ग्रंथों का अक्षरशः अनुदान एवं मिलावट भी कर दी गई है जिस को कवि की साहित्यिक चोरी कहा जा सकता है। परन्तु इन दोषों के होते हुये भी यह कवि की कीर्ति का आधार स्तम्भ है और विश्वविख्यात कलाकृति है। काव्य की दृष्टि से तुलसीदास को हिन्दी साहित्याकाश का सर्वा माना जाता है। रस एवं अलंकारों की जो छटा तुलसीकाव्य में मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। एक कवि के शब्दों में–

कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसी की कला।

अतः किशोरीलाल चन्द्र की रामायण के विषय में एक कविता प्रस्तुत है –

शिक्षा दे रही जो हमको रामायण अति प्यारी।
एक समय में एक पुरुष ने ब्याही ज्यादा नारी,
वृद्धावस्था में दशरथ की इसने बात बिगारी।।1।।
राज छोड़ वन गये रामजी पितु आज्ञा सिर धारी,
अब तो पितु के लिए पुत्र जन करते गारी ख्वारी।।2।।
राज-महल के सभी सुखों को एक दम ठोकर मारी,
वन में गयी पति के संग में सिय सतवन्ती नारी।।3।।
विपत्ति समय में संग राम के की लक्ष्मण तैयारी,
अब तो खून के प्यासे भाई रहें मुक़द्दमे जारी।।4।।
राज-तिलक को गेंद बना कर खेलन लगे खिलारी।
इधर राम, उस तरफ भरत दोनों ने ठोकर मारी।।5।।
चरण पादुका धरी तख्त पर ये ही बात विचारी,
साधु बन कर रहा भरत नहीं बना राज अधिकारी।।6।।

राम लखन ने सूर्पणखा को माता बोलि पुकारी,
अब जहाँ देखें चिकनी मिट्टी फिसल जाय व्यभिचारी ।।7।।
लक्ष्मण शीश झुकाता था कह सीता को महतारी ।
हाय आजकल तो भावज को कहते आधी नारी ।। 8।।
लालच और तलवार से डरकर सिया न हिम्मत हारी,
थोड़े भय से धर्म गमावें हाय आजकल नारी ।।9।।
था पण्डित विद्वान् वो रावण देखो आँख उघारी,
मदिरा माँस परनारि हरण से राक्षस बना अनारी ।।10।।
तन मन से था सेवा करता हनुमान बलधारी,
अब तो मुँह पर करें खुशामद पीछे देवें गारी ।।11।।
भगत विभीषण ने भाई की संगत बुरी बिसारी,
अच्छी संगत में तुम जाओ कहते चंद्र पुकारी ।।12।।

5. महर्षि वाल्मीकि रामायण ज्ञानामृत

एक दिन सुबह के समय तमसा नदी के एक अत्यंत निर्मल जल वाले तीर्थ पर महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्य भारद्वाज के साथ स्नान के लिए गए तब वहाँ नदी के किनारे पक्षियों का एक जोड़ा सहवास में मगन था। तभी व्याध ने इस जोड़े में से नर क्रौंच को अपने बाण से मार गिराया। तब रोती हुई मादा क्रौंच भयानक विलाप करने लगी तो करुणा के महासागर महर्षि वाल्मीकि का हृदय इतना द्रवित हुआ कि उनके मुख से अचानक यह श्लोक फूट पड़ा–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमः गम शास्वती समा।

यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

करुणा में से काव्य का उदय हो चुका था जो वैदिक काव्य की शैली, भाषा और भाव से एकदम अलग व नया था। इसलिए महर्षि वाल्मीकि को ब्रह्मा का आशीर्वाद मिला कि, ''तुमने काव्य रचा है। तुम आदि कवि हो, अपनी इसी श्लोक शैली में राम कथा लिखना और जब तक दुनिया रहेगी, जब तक पहाड़ और नदियाँ रहेंगी, तब तक रामायण की कथा का तीनों लोकों में प्रचार होता रहेगा।

वाल्मीकि रामायण महात्म्य

(1) रामायण धर्म, अर्थ काम और मोक्ष का साधन तथा परम अमृतरूप है। अतः सदा भक्ति भाव से उसका श्रवण करना चाहिए। 1.24

(2) जो मनुष्य सदा भक्तिभाव से रामायण कथा को पढ़ते और सुनते हैं, उन्हें गंगास्नान की अपेक्षा सौगुणा पुण्यफल प्राप्त होता है। –2.73

(3) मनुष्य जब तक कमाकर धन देता है, तभी तक लोग उसके भाई बन्धु बने रहते हैं और उसके कमाये हुए धन को सारे बन्धु-बान्धव सदा भोगते रहते हैं, किन्तु मूर्ख मनुष्य अपने किए हुए पाप के फल रूप दुःख को अकेला ही भोगता है। –4.27

(4) गंगा के समान तीर्थ, माता के तुल्य गुरु, भगवान् विष्णु के सदृश देव तथा रामायण से बढ़कर कोई उत्तम वस्तु नहीं। —5.21

(5) श्री राम का नाम — केवल श्रीराम नाम ही मेरा जीवन है। कलियुग में और किसी उपाय से जीवों की संगति नहीं होती। —5.50

बालकाण्ड

(6) इसमें महर्षि ने चौबीस हज़ार श्लोक, पाँच सौ सर्ग तथा उत्तर सहित सात काण्ड हैं। —अयोध्याकाण्ड 4.2

(7) संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। धर्म से ही सत्य की प्रतिष्ठा है। —21.41

(8) सुख-दुःख, भय-क्रोध (क्षोभ) लाभ-हानि, उत्पत्ति और विनाश तथा इस प्रकार के और भी जितने परिणाम प्राप्त होते हैं। जिनका कोई कारण समझ में नहीं आता, वे सब देव के ही कर्म होते हैं। —22.22

(9) निश्चय ही इस जगत् में दैव सब से बड़ा बलवान है। उसकी आज्ञा सबके ऊपर चलती है—वही सब को सुख दुःख से संयुक्त करता है, क्योंकि उसी के प्रभाव में आकर तुम्हारे जैसा लोकप्रिय मनुष्य भी वन में जाने को उद्यत है। —24.5

(10) मनुष्य शुभ या अशुभ जो भी कर्म करता है, भद्रे! अपने उसी कर्म के फलस्वरूप सुख या दुःख कर्त्ता को प्राप्त होते हैं। —63.6

(11) समस्त संग्रहों का अंत विनाश है। लौकिक उन्नतियों का अंत पतन है। संयोग का अंत वियोग है और जीवन का अंत मृत्यु है। —105.16

अरण्यकाण्ड

(12) जो राजा प्रजा से उसकी आय का छठा भाग कर के रूप में लेते और पुत्र की भाँति प्रजा की रक्षा न करें, उसे महान् अधर्म का भागी होना पड़ता है। —6.11

(13) धर्म से अर्थ प्राप्त होता है, धर्म से सुख का उदय होता है और धर्म से ही मनुष्य सब कुछ पा लेता है। इस संसार में धर्म ही सार है। —9.30

किष्किंधाकाण्ड

(14) उत्साह ही बलवान् होता है। उत्साह से बढ़कर दूसरा कोई बल नहीं है। उत्साही पुरुष के लिये संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। —सुन्दरकाण्ड 1.121

(15) किसी के साथ अत्यंत प्रेम न करो और प्रेम का सर्वथा अभाव भी न होने दो; क्योंकि ये दोनों ही महान् दोष हैं। अतः मध्यम स्थिति पर ही दृष्टि रखें। — 22.23

(16) किसी ने उपकार किया हो तो बदले में उसका भी उपकार किया जाए। —1.123

(17) पति के हाथ को सुशोभित करने वाली उस मुद्रिका को लेकर सीता उसे ध्यान से देखने लगीं। उस समय जानकी को इतनी प्रसन्नता हुई, मानो स्वयं उनके पतिदेव ही उन्हें मिल गये हों। —36.4

(18) दैव के विधान को रोकना प्राणियों के वश की बात नहीं है। —37.4

(19) दया करना सब से बड़ा धर्म है। —38.39

युद्धकाण्ड

(20) कोई अपने आकार को कितना ही क्यों न छिपाये, उसके भीतर का भाव कभी छिप नहीं सकता। बाहर का आकार पुरुषों के आन्तरिक भाव को बलात् प्रकट कर देता है।

(21) लक्ष्मण एक ही वेग से पाँच सौ बाणों की वर्षा करते थे इसलिये धनुर्विद्या में अर्जुन से बढ़ कर थे। —49.20

(22) धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों में धर्म ही श्रेष्ठ है।—63.10

(23) यह शरीर क्षणभंगुर है । इससे जो तप का उपार्जन नहीं करता वह मूर्ख मरने के बाद जब उसे अपने दुष्कर्मों का फल मिलता है, पश्चाताप करता है । 15.22

(24) किसी भी बुद्धिमान पुरुष को अपने सामने आये हुए शत्रु को छोड़ना नहीं चाहिये । जो अपनी घबरायी हुई बुद्धि के कारण शत्रु को निकल जाने का अवसर दे देता है, वह मन्दबुद्धि पुरुष कायर के समान मारा जाता है । –68.19

(25) जब तक चन्द्रमा और सूर्य रहेंगे, जब तक पृथ्वी रहेगी और जब तक संसार में मेरी कथा प्रचलित रहेगी, तब तक इस भूतल पर तुम्हारा राज्य रहेगा । –108.28

अनेक रामायणों और व इन पर रचित भाष्यों को तुलनात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है कि वाल्मीकि रामायण ही जिसको आदि महाकाव्य के नाम से पुकारा जाता है सब से प्रामाणिक ग्रंथ है जिसका सार है **''यतो धर्मस्ततो''** अर्थात् जहाँ धर्म है वहीं विजय है ।''

6. ''रामचरितमानस'' के 25 अत्यंत महत्वपूर्ण पद्यांशों की व्याख्या

(1) ''रामचरितमानस'' में से मैंने केवल 25 प्रष्टव्य पद्यांशों का चयन किया है जोकि साधारणतः विभिन्न अवसरों पर बोले जाते हैं। वस्तुतः यही इसका सारामृत है जिन्हें प्रस्तुत करके सागर को गागर में भर दिया गया है।

(2) प्रत्येक मौलिक प्रष्टव्य पद्यांश प्रस्तुत किया गया है।

(3) इसके पश्चात् प्रत्येक पद्यांश के कठिन शब्दों के अर्थ लिख दिये गये हैं ताकि पाठक को इसे समझने में सुविधा हो।

(4) प्रत्येक प्रष्टव्य पद्यांश के अंत में इसकी व्याख्या को प्रस्तुत किया गया है।

बालकाण्ड

(1) आकर चारि[1] लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी।।
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग[2] पानी[3]।।

7(घ).1

(1) अण्डज, पिण्डज, उद्भिज, स्वेदज चार प्रकार के जीव (2) दोनों (3) हाथ।

इस संसार में 84 लाख योनियों में चार प्रकार के जीव जरायुज, अण्डज, उद्भिज, स्वेदज समूचे ब्रह्माण्ड में रहते हैं। उन सबसे भरे हुए इस समस्त संसार को सीताराममय जानकर मैं करबद्ध प्रणाम करता हूँ। वस्तुतः तुलसीदास श्रीराम के अनन्य एवं ज्ञानी भक्त थे। इसी कारण उन्हें संसार के कण-कण में सीता राम ही नजर आते थे। क्योंकि जैसी व्यक्ति की दृष्टि होती है वैसी उसे सृष्टि नजर आती है। इसी प्रकार गुरु रामदास जी ''श्रीगुरुग्रंथसाहिब'' में लिखते हैं–

आपे अंडज जेरज सेतज उतभुज आपे खंड आपे सम लोइ।।
आपे सूतु आपे बहु मणीआ करि सकती जगतु परोइ।।

आपे ही सुतधारु है पिआरा सूतु खिंचे ढहि ढेरी होइ।।
मेरे मन मैं हरि बिनु अवरु न कोइ।। —महला 4 पृ० 605

अण्डज, पिण्डज, उद्भिज एवं स्वेदज अर्थात् चार प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति हुई है। अण्डे से पैदा होने वाले जीवन जैसे कबूतर, चिड़िया, सर्प आदि को अण्डज कहते हैं। जेर से पैदा होने वाले जीव जैसे मानव, पशु पिण्डज, उद्भिज पृथिवी से पैदा होने वाली वनस्पति जगत् जैसे वृक्ष, लता आदि एवं स्वेदज मक्खी, मच्छर कीटाणु आदि इन सब में स्वयं परमात्मा है। सारे संसार में वही परमात्मा है। जैसे मोतियों की माला में एक धागा और उसमें पिरोए हुए मोती होते हैं। उसी प्रकार यह सारा संसार परमात्मा का ही है। स्वयं एक सूत के समान एवं उसमें पिरोए मोतियों के समान है। सूत भी वो ही मोती भी वह ही स्वयं ही वो सूत्रधार है। अपनी खुशी से जब वह प्यारा अपनी शक्ति से सूत खींचता है तो सारी रचना ढह जाती है। मेरे मन में परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। परमात्मा सर्वव्यापक है।

(2) **नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू।।** **—26.4**

कलियुग में न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है परन्तु राम नाम ही एक आधार है। कवि के कहने का भाव यह है कि शुद्ध मन से राम नाम का जाप करके मानव भवसागर से पार उतर सकता है। जैसे गुरुनानक जी लिखते हैं –

किरत करो, नामजपो, बंड छक्को।

ईमानदारी से अपना काम करो, सदा परमात्मा को याद रखो और अपनी हैसियत के अनुसार दुःखी व्यक्ति और असहायों की सहायता करो। यही सब धर्मों का सार है।

(3) **होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा[1]।।** **—51.4**

(1) विस्तार।

शिव पार्वती से कहते हैं कि वही होगा जो प्रभु चाहते हैं, फिर इस विषय को विस्तार देना व्यर्थ है अर्थात् मानव को जीवन में चिन्ता नहीं करनी चाहिए। अपितु प्रभु चरण-शरण में रहना चाहिये तभी उसके जीवन में सुख, शांति एवं आनंद की वृष्टि होगी। इन पंक्तियों की तुलना सूरदास जी की निम्नलिखित पंक्तियों से द्रष्टव्य है–

करी गोपाल की सब होइ।

जो अपनौ पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोई।।

भक्त जब साधना की चरमसीमा पर पहुँच जाता है तो उसके लिये सांसारिक हानि लाभ का महत्व गौण हो जाता है। वह समझता है जो कुछ हो रहा है उसके मूल में व्यक्ति का कोई भी पौरष नहीं है। अतः जो भी होता है वह प्रभुकृपा से ही होता है। प्रभु जो करना चाहेंगे वही होगा। क्योंकि कर्त्ता का भाव से युक्त होना अनिष्ट को आमंत्रित करना है। अतः सदा परमात्मा की रजा में रहना उचित है।

(4) **सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।गावहिं मुनि पुरान बुध[1] बेदा[2]।।**
अगुन[3] अरूप[4] अलख[5] अज[6] जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।। –115.1

(1) पंडित (2) वेद (3) निर्गुण (4) निराकार (5) अलख (6) अजन्मा।

शिवजी पार्वती को परमात्मा के अपार गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि निर्गुण और सगुण में कुछ भी अंतर नहीं है। जो निर्गुण, निराकार, अव्यक्त व अजन्मा है वही भक्तजनों के प्रेम के कारण सगुण हो जाता है अर्थात् परमात्मा के गुण अनंत एवं असीम है। इसी कारण उपनिषदों में भी परमात्मा को नेति नेति (यह नहीं है यह नहीं है) कहकर पुकारा गया है।

परन्तु यह प्रस्तुत सिद्धान्त वेद विरुद्ध है क्योंकि परमात्मा सदा से निराकार एवं सर्वव्यापक है और रहेगा। वह कभी भी सगुण एवं एकदेशीय नहीं हो सकता है। हाँ वह अनन्त होने के कारण गुणों का भंडार है।

(5) **हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना।।**
देसकाल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।।

—184.3

परमात्मा की सर्वव्यापकता पर प्रकाश डालते हुये शिव पार्वती से कहते हैं कि परमात्मा सर्वस्थानों पर समान रूप से व्यापक है। वह सृष्टि के कण-कण में दृष्टिगोचर हो रहा है। परन्तु वह प्रेम एवं श्रद्धा से ही प्रकट होते हैं। देश, काल, दिशा, विदिशा में बताओ ऐसा कहाँ स्थान है जहाँ पर परमात्मा न हो। कवि के कहने का भाव यह है कि परमात्मा सृष्टि के ज़र्रे-ज़र्रे में ओतप्रोत है। इसी भाव को यजुर्वेद में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

ओम् ईशा वास्यामिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।। 40.1

इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ दिखाई दे रहा है सभी कुछ ईश्वर से व्याप्त है। ईश्वर इस संसार के कण-कण में है। अतः प्रभु-प्रदत प्रत्येक वस्तु का त्यागपूर्ण भोग करो और उससे चिपटो मत। क्योंकि यह धन किसी का भी नहीं है।

(6) **जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।।** 240.2

जिस समय राम एवं लक्ष्मण सीता विवाह में पधारे मानो साक्षात् सौंदर्य उन पर छा रहा हो। वे दोनों भाई अनेक राजाओं के मध्य में ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों तारों के मध्य में दो पूर्ण चन्द्रमा। परन्तु फिर भी जिनकी जैसी भावना थी उसी प्रकार से उन्हें देखा। कवि के कहने का तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति

अपनी भावना के अनुसार ही सृष्टि का अवलोकन करता है तभी तो कहा जाता है जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। इस प्रकार अपनी भावना के अनुसार ही सब व्यक्तियों ने राम एवं लक्ष्मण को देखा।

(7) **जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू।।**

-258.3

सीता के विवाह के समय सीता अपनी सखियों से अपनी बढ़ी हुई व्याकुलता प्रगट करती हुई कहती है कि सबके हृदय में निवास करने वाले श्रीराम मुझे अवश्य ही अपनी दासी स्वीकार करेंगे क्योंकि जिसका जिस पर सत्य स्नेह होता है वह उसे अवश्य ही मिलता है। इसमें कुछ भी संदेह करने की बात नहीं है अर्थात् यहाँ पर सीता का सत्य प्रेम एवं श्रद्धा व्यक्त की गई है।

अयोध्याकाण्ड

(8) **रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ[1] बरु[2] बचनु न जाई।।**

–27.2

(1) जाए (2) भले ही

जिस समय कैकेयी राजा दशरथ द्वारा दिये गये दो वर माँगती है और राजा दशरथ कहते हैं कि दो न चार वर ले लो। उस समय राजा दशरथ कैकेयी से कहते हैं कि रघुकुल में यह प्रथा सदा से चली आई है कि रघुवंशी के प्राण भले ही चले जाए परन्तु दिये हुये वचन का निर्वाह करता है।

(9) **करम बचन मन छाड़ि[1] छलु जब लगि[2] जनु[3] न तुम्हार।**
तब लगि[4] सुखु सपनेहुँ नहिं किएँ कोटि[5] उपचार।। –107

(1) छोड़ कर (2) जब तक (3) व्यक्त (4) तब तक (5) करोड़ो उपाय।

जिस समय राम, लक्ष्मण, सीता, भारद्वाज मुनि के आश्रम

पहुँचकर कंदमूल फल आदि खाकर तृप्त हो जाते हैं । भारद्वाज श्रीराम को कहते हैं कि मेरी सारी आशाएं पूर्ण होगी । उस समय भारद्वाज मुनि श्रीराम से कहते हैं कि जब तक मानव कर्म, वचन और मन से छल कपट को छोड़कर तुम्हारा भक्त नहीं बन जाता तब तक करोड़ों उपाय करने पर भी उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता । कवि के कहने का भाव यह है कि राम और उसकी भक्ति व्यक्ति को मन वचन और कर्म के निर्मल होने से ही प्राप्त होती है । जैसे कबीर लिखते हैं–

कबीरा मनु निरमलु भया जैसे गंगा नीर ।
पाछे लागो हरि फिरै कहत कबीर कबीर । ।

श्रीगुरुग्रंथसाहिब पृ. 1367

(10) **सुनहु भरत भावी[1] प्रबल[2] बिलखि[3] केहेउ[4] मुनिनाथ[5] ।**
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपयसु बिधि[6] हाथ । । –171

(1) होनहार या भाग्य (2) बलवान् (3) दुःखी होकर (4) कहा (5) वशिष्ठ मुनि (6) विधाता ।

जिस समय भरत ने अपने पिता राजा दशरथ का मृतक संस्कार कर दिया । इसके बाद अन्य लोगों के साथ वसिष्ठ मुनि ने भरत और शत्रुघ्न को बुलाया और उन्होंने कहा कि राजा दशरथ धर्म का पालन करते-करते अपना शरीर त्याग गये और वे बातें करते-करते शोक सागर में डूब गये । उस समय वशिष्ठ मुनि दुःखी होकर भरत जी से कहते हैं– सुनो भरत ! यह होनहार या भाग्य बड़ा बलवान् होता है । हानि लाभ, जीवन मरण और यश अपयश यह सब परमात्मा के हाथ में हैं न कि व्यक्ति के । इन पर व्यक्ति का कोई भी वश नहीं चलता ।

(11) **जरउ[1] सो[2] संमति सदन[3] सुखु सुहृद[4] मातु पितु भाइ ।**
सनमुख[5] होत जो रामपद करै न सहस[6] सहाइ[7] । । –185

(1) जल जाय (2) वे (3) घर (4) मित्र (5) सामने

(6) हज़ारों (7) सहायता

जिस समय भरत मुनि वसिष्ठ आदि अन्य लोगों ने श्रीराम आदि के दर्शन के लिये वन जाने का निर्णय कर लिया सब लोग समझने लगे कि भरत का जीवन धन्य है क्योंकि अब हम श्रीराम के दर्शन करेंगे। उस समय तुलसीदास जी कहते हैं कि वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता-पिता और भाई चाहे सब जल जाय या नष्ट हो जाये यदि ये श्रीराम के चरणों के सम्मुख होने से हज़ारों प्रकार से सहायता न करे या बाधा डाले। अतः इन भौतिक वस्तुओं से रामभक्ति अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं यहाँ भरत की अनन्य भक्ति दिखाई गई है। क्योंकि प्रभु का अनन्य भक्त वही होता है जो प्रभु की निष्काम भक्ति करे। ऐसी भावना भरत में दृष्टिगोचर होती है।

(12) **करम प्रधान बिस्व करि राखा।**

जो जस[1] करइ सो तस[2] फलु[3] चाखा।। –218.2

(1) जैसा (2) वैसा (3) भोगता है।

यह उस समय का प्रसंग है जब बृहस्पति इन्द्र से कहते हैं कि श्रीराम को अपना सेवक परमप्रिय है। वे अपने सेवक की सेवा में सुख मानते हैं और सेवक के साथ वैर करने से बड़ा भारी वैर मानते हैं। वस्तुतः परमात्मा सम है वह किसी से न प्रेम रखते हैं न रोष। इस संसार में कर्म ही प्रधान्य है जो व्यक्ति जैसा करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में लिखा है–

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं।

जो किसी व्यक्ति ने शुभ या अशुभ कर्म किये हैं उनका फल अवश्य ही उसे भोगना पड़ेगा। संसार में इसके बचने को कोई भी उपाय नहीं है।

(13) **धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद[1] काल परिखिअहिं[2] चारी ।।**

—4.3

(1) विपत्ति (2) परीक्षा

जब वनगमन जाते समय राम, सीता और लक्ष्मण अत्रि मुनि के आश्रम पर पहुँचते हैं तो अत्रि मुनि की धर्मपत्नी अनुसूया माता सीता से कहती है कि माता, पिता और भाई सभी हितकारी होते हैं परन्तु ये संबंधी एक सीमा तक ही सुखकारी हैं परन्तु पति तो असीम सुखकारी होता है । वह स्त्री अधम है तो पति सेवा नहीं करती । परन्तु आगे वह सीता को उपदेश देती हुई कहती है कि धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री इन चारों की विपत्तिकाल में ही परीक्षा होती है ।

(14) **क्रोध मनोज[1] लोभ मद माया । छूटहिं सकल गम कीं दाया[2] ।।**
सो नर इंद्रजाल[3] नहिं भूला । जा पर होइ सो नट[4] अनुकूला ।।
उमा कहँउ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना ।।

—38(ख) 2.3

(1) काम (2) कृपा (3) मायाजाल (4) नटराज प्रभु ।

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि श्रीराम गुणातीत है चराचर जगत् के स्वामी और सेवक के हृदय को जानने वाले हैं । उन्होंने ही कामी लोगों की दीनता दिखलायी है और विवेकी पुरुषों के मन में वैराग्य को दृढ़ किया है । इस प्रकार आगे उपदेश देते हुये शिव कहते हैं कि हे पार्वती ! क्रोध, काम, लोभ, मद और माया— ये सभी विकार प्रभुकृपा से ही छूट जाते हैं । वह नटराज प्रभु जिस पर प्रसन्न होते हैं वह व्यक्ति मायाजाल में नहीं फंसता । हे उमा ! मैं तुम्हें अपना अनुभव बतलाता हूँ कि प्रभुभजन ही सत्य है और यह सारा संसार तो स्वप्न की भाँति क्षणभंगुर है ।

(15) **जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि[1] बिलोकत[2] पातक[3] भारी।।**
निज दुख गिरि[4] सम रज[5] करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु[6] समाना।।
जिन्ह के असि[7] मति[8] सहज[9] न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई[10]।।
कुपथ निवारि[11] सुपथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा[12]।।
–6.1.2

(1) उन्हें (2) देखने से (3) पाप (4) पर्वत (5) धूल (6) बड़े भारी पर्वत (7) ऐसी (8) बुद्धि (9) प्राप्त (10) मित्रता (11) रोककर (12) छिपाते।

सुग्रीव श्रीराम से कहते हैं कि बाली ने मुझे शत्रु की भाँति मारा। मेरा सर्वस्व और स्त्री को भी हरण कर लिया। इस प्रकार श्रीराम की दोनों विशाल भुजायें अपने सेवक सुग्रीव का दुःख सुनकर फड़क उठी। श्रीराम ने सुग्रीव को कहा कि मैं बाली को एक ही बाण से मार डालूंगा। आगे राम सुग्रीव को समझाते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति मित्र के दुःख को बड़े भारी पर्वत के समान माने वही सच्चे अर्थों में मानव है। जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि नहीं मिलती है वे मूर्ख व्यक्ति हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते हैं? मित्र का धर्म है कि वह मित्र को कुमार्ग से रोककर सुमार्ग पर चलाये। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपावे। तभी वह सच्चामित्र कहलाने का अधिकारी है अन्यथा नहीं?

(16) **सेवक सेठ[1] नृप कृपन[2] कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी।।–6.5**

(1) दुष्ट नौकर (2) कंजूस राजा।

श्रीराम सुग्रीव से कहते है कि जो व्यक्ति सामने तो बना बनाकर कोमल वचन बोलता है। पीठ पीछे बुराई करता है, हे सुग्रीव!

जिस व्यक्ति का मन साँप की चाल के समान टेड़ा है ऐसे कुमित्र का परित्याग ही हितकर है क्योंकि दुष्ट नौकर, कंजूस राजा, बुरी स्त्री और कपटी मित्र ये चारों शूल के समान दुःख देते हैं। अतः इन सब का त्याग करना ही जीवन के लिये कल्याणकारी है।

(17) **दामिनि[1] दमक[2] रह घन[3] माहीं। खल[4] कै प्रीति जथा[5] थिर[6] नाहीं।।**
बरषहि जलद[7] भूमि निअराएँ[8]। जथा नवहि[9] बुध[10] विद्या पाएँ।।
बूँद अघात[11] सहहिं गिरि[12] कैसें। खल के वचन संत सह जैसें।।
छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई[13]। जस थोरेहुँ धन खल इतराई[14]।।

−13.1.2.3

(1) बिजली (2) चमकना (3) बादल (4) दुष्ट (5) जैसे (6) स्थिर (7) बादल (8) समीप आकर (9) झुकना (10) विद्वान् (11) चोट (12) पर्वत (13) किनारों को तोड़ना (14) घमंड करना।

यह उस समय का प्रसंग है जब श्रीराम व लक्ष्मण प्रवर्षण पर्वत पर जा टिकते हैं। वर्षा ऋतु का श्रीगणेश हो जाता है और आकाश में बादल घुमड़-घुमड़ कर घोर गर्जना कर रहे होते हैं। राम का हृदय सीता के बिना अत्यंत व्याकुल हो जाता है। तो उस समय राम लक्ष्मण को कहते हैं कि बादलों में बिजली इस प्रकार चमक रही है जैसे दुष्ट व्यक्ति की प्रीति स्थिर नहीं रहती। राजनीति का कैसा सुन्दर सूत्र है यह! पृथ्वी के समीप आकर बादल ऐसे बरस रहे हैं जैसे विद्या पाकर विद्वान् लोग झुक जाते हैं। बूँदों की चोट को पर्वत इस प्रकार सहते हैं जैसे दुष्टों के वचनों को सज्जन सहते हैं। छोटी नदियाँ भरकर किनारों को तोड़ती हुई इस प्रकार चलती है जैसे थोड़े ही धन को पाकर दुष्ट व्यक्ति घमंड करने लगते हैं और मर्यादा का त्याग करते हैं।

सुन्दरकाण्ड

(18) **निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।**

–43.3

विभीषण जब अपने बड़े भाई रावण को छोड़कर श्रीराम की शरण में आना चाहता है। सुग्रीव, हनुमान आदि को उस पर शक होता है। जब सुग्रीव उसके आगमन की सूचना श्रीराम को देता है तो राम उसे अपनी शरण में आने की आज्ञा देते हैं। उस समय श्रीराम, सुग्रीव के समझाते हुए कहते हैं कि यदि विभीषण के हृदय में पाप होगा तो वह उनके सामने नहीं आयेगा। यदि वह पापों का परित्याग करके प्रायश्चित करना चाहता है तो उसे अवश्य अवसर प्रदान करना चाहिये। अतः उसे मेरी शरण में ले आइये–

उस समय श्रीराम सुग्रीव का उपदेश देते हुये कहते हैं कि सुग्रीव ने विभीषण को कपटी कहा था। परन्तु श्रीराम इसका खण्डन करते हुए कहते हैं कि मैं दुष्ट हृदय वाले व्यक्ति को नहीं प्राप्त होता क्योंकि मुझे छल, छिद्र व कपट अच्छा नहीं लगता। अतः जो मनुष्य शुद्ध मन वाला होता है जिसके भाव एवं विचार निर्मल होते हैं वही मेरी कृपा प्राप्त कर मेरे दर्शनों को आता है। इसका दूसरा भाव यह भी है कि यदि कोई कपट छलयुक्त है मेरी शरण में आ जाने से वह निर्मल हो जाता है। कवि के कहने का भाव यह है कि प्रभुमिलन के लिये हृदय की शुद्धता परमावश्यक है। यदि आप का हृदय शुद्ध हो गया तो अहंकार भी नहीं रहेगा।

लंकाकाण्ड

(19) **पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं वे नर न घनेरे।।** –77.1

जिस समय लक्ष्मण मेघनाद का वध कर देता है। जब मंदोदरी पीट-पीट कर रोने लगती है। रावण वहाँ पर उपस्थित नारियों

को कहता है कि सारा संसार नाशवान् है आगे वह कहता है कि सत्य तो यह है कि संसार में दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण है परन्तु ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जो उस पर आचरण करते हैं । जैसे मानस पीयूष (खण्ड-6) में लिखा है–

दूसरों को सिखाने में पण्डिताई करना सभी मनुष्यों को सहज है पर अपने धर्म में दृढ़ता लगे रहना किसी-किसी ही महात्मा में पाया जाता है । –पृ० 391

इसके विषय में उर्दूशायर इक़बाल भी लिखते हैं–

(1) इक़बाल बड़ा उपदेशक है, मन बातों से मोह लेता है ।
गुफ़्तार का ग़ाजी तो बना, किरदार का यह बन न सका ।।

(2) अमल से ज़िन्दगी बनती है, जगत भी जहन्नुम भी ।
ये साकी अपनी फ़ितरत से न नूरी है न नारी है ।।

उत्तरकाण्ड

(20) **पर हित सरिस[1] धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई[2]**
निर्नय[3] सकल पुरान बेद कर । केहउँ तात जानहिं कोबिद नर[4] ।।

–40.1

(1) समान (2) पाप (3) निश्चित् (4) विद्वान्

श्रीराम अब परोपकार पर बल देते हुए भरत से कहते हैं कि हे भाई भरत ! दूसरों की भलाई के समान कोई भी धर्म नहीं है और दूसरों के दुःख देने के समान कोई भी पाप नहीं है । अर्थात् दूसरों का हित करना धर्म है और दूसरों को दुःख देना पाप है । पुराणों और वेदों का यह निश्चित् सिद्धान्त है, उसका उल्लेख ही मैंने किया है । इसके अतिरिक्त इस बात को पंडित लोग भी जानते और मानते हैं अर्थात् यह सत्य है । स्कन्द पुराण में लिखा है–

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयात् ।
परोपकारः पुण्यम् पापाय परपीड़नम् ।। –1.8

चार वेद षट शास्त्र में बात मिली है दोय ।
दुःख दीने दुःख होत हैं सुख दीने सुख होय ।।

पुराणों में दो बातें ही मुख्य हैं । परोपकार पुण्य है और दूसरों को पीड़ा देना पाप है ।

(21) **बड़ें भाग मानुष तनु पावा । सुर[1], दुर्लभ[2] सब ग्रंथन्हि गावा ।।**
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ।।
सो[3] परत्र[4] दुख पावइ । सिर धुनि धुनि पछिताइ ।।
कालहि कर्महि ईस्वरहि । मिथ्या दोस लगाइ ।।
एहि तन कर फल विषय न भाई । स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाईं ।।
नर तनु पाइ विषयँ मन देहीं । पलटि सुधा ते[5] सठ[6] विष लहीं ।।

–42.4, 43.I.2

(1) देवता (2) कठिन (3) वह (4) व्यक्ति (5) अमृत (6) दुष्टा

श्री राम अपने नगरवासियों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि यह मानव जीवन बड़े भाग्य से मिलता है । तभी तो मानव को परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति माना गया है । सब ग्रंथों में यही कहा गया है कि मानव चोला बड़ी तपस्या एवं कठिनता से प्राप्त होता है । यह साधन धाम एवं मुक्ति द्वार माना गया है । इस मानव शरीर को धारण करके जिसने परलोक को न सुधार लिया तो वह व्यक्ति वहाँ भी दुःख को प्राप्त होता है । सिर पीट पीटकर पछताता और ताप सहन करता है और अपने दोष न समझकर काल, धर्म और परमात्मा पर झूठा दोष लगाता है । हे भाई ! इस शरीर को प्राप्त होने का फल विषय भोग नहीं है । सांसारिक भोगों की तो बात ही छोड़िये स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अंत में दुःखदाई है । इसलिये जो व्यक्ति मानव शरीर पाकर विषयों में मन लगा देते हैं वे मूर्ख अमृत की अपेक्षा विष प्राप्त करते हैं । कवि के कहने का भाव यह है कि मानव जीवन में भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद का सुन्दर समन्वय होना चाहिये तभी जीवन में सुख, शांति और आनन्द की वृष्टि हो सकती है ।

(22) **मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा[1] । पंडित सोइ जो गाल[2] बजावा । ।**
मिथयारंभ दभ[3] रत[4] जोई । ता कहुँ संत कहइ सब कोई । ।

–97(ख)2

(1) अच्छा लगना (2) डींग मारना (3) घमंड (4) अनुरक्त

काकभुशुण्डि गरुड से कहते है जिस व्यक्ति को जो अच्छा लगता है वही उसका मार्ग होता है और उसी का वह अनुसरण करता है । डींग मारने वाला व्यक्ति ही पंडित कहलाता है । जिनके कार्यों का श्रीगणेश ही आडम्बर है । जो ऐसे कामों एवं दंभो से अनुरक्त है उनको संत कहते हैं । कवि के कहने का भाव यह है कलियुग में अभिमान, पाखंडों और दंभी साधनों का ही बोलबाला होता है जैसे कि हम आजकल देखते हैं कि अधिकतर साधु ऐसे ही है और सच्चा साधु कोई बिरला ही है । कवि ने आधुनिक साधु के विषय में सत्य ही लिखा है–

फूटी आँख विवेक की, लखै न संत असंत ।
जा के साथ दस बीस है, वही कहाते महंत । ।

(23) **ईस्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ।**
सो मायाबस भयउ गोसाईं । बँध्यो कीर मरकट की नाईं । ।

–116(ख) 1.2

काकभुशुण्डि गरुड जी को ज्ञान व भक्ति में अंतर समझाते हुए कहते हैं कि आत्मा परमात्मा का अंश है और यह आत्मा अविनाशी, चेतन, स्वाभाविक, निर्मल एवं सुखराशि है । परन्तु यह आत्मा तोते और बंदर की भाँति स्वयं मोह माया के जाल में बँधी हुई हैं तोतो को पकड़ने के लिये बहेलिया पृथ्वी पर दो लकड़ियां गाड़ कर उन्हें एक नली से बाँध देता है और पृथ्वी पर दाने डाल देता है । जब तोते दाने चुगने आते हैं और नली पर दाने चुगने के लिये झुकते हैं तब नली घूम जाती है और वे उलटे लटक जाते हैं । बहेलिया आकर उन्हें पकड़ लेता है । इसी प्रकार वानरों को पकड़ने के लिए तंग मुँह के चनों से भरे हुए

घड़ों को पृथ्वी में गाड़ देते हैं। जब वानर आकर घड़ों में अपने-अपने हाथ डालते हैं और चनों से मुट्ठी भर जाने से उनका हाथ घड़ों से बाहर नहीं निकलता है और बहेलिया आकर उन्हें पकड़ लेता है।

वस्तुतः वैदिक सिद्धान्त के अनुसार आत्मा, परमात्मा एवं प्रकृति तीन अनादि एवं स्वतंत्र सत्ताए हैं। इसे ही त्रैतवाद के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु कुछ विद्वानों ने आत्मा को परमात्मा का अंश इसलिये कह दिया क्योंकि दोनों अनादि व चेतन सत्ताएँ हैं। आत्मा अल्पज्ञ है और परमात्मा सर्वज्ञ है। अतः वह परमात्मा का अंश न होकर एक स्वतंत्र, अनादि सत्ता है।

(24) **संत हृदय नवनीत[1] समाना। कहा कबिन्ह[2] परि[3] कहै न जाना।**
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं[4] संत सुपुनीता[5]।।

–124(ख).4

(1) मक्खन (2) कवियों (3) परन्तु (4) दुःखी होना (5) परम पवित्र संत

गरुड़ काकभुषुण्डि को उपदेश देते हुए कहते हैं कि सच्चे संतों का हृदय मक्खन के समान कोमल होता है, ऐसा कवियों ने कहा है, परन्तु उनका यह कहना सत्य नहीं है। उन्होंने यह उपमा ठीक नहीं दी है क्योंकि मक्खन तो अपनी ही गर्मी या ताप से पिघलता है। परन्तु इसके विपरीत परम पवित्र संत पराये दुःख को देखकर द्रवीभूत हो जाते हैं। कहने का भाव यह है मक्खन में कोमलता अपने लिये है, दूसरे के परिताप से मक्खन में कोई विचार उत्पन्न नहीं होता। अतः वह नहीं पिघलता जब स्वयं अग्नि पर ताप लगता है तभी पिघलता है। अपने दुःख से दुःखी होना तो दुष्टों में भी है। अतः उसकी प्रशंसा ही क्या? परन्तु परम पवित्र संत दूसरों के दुःख सह नहीं सकते और व्याकुल हो जाते हैं। जैसे आचार्य सुदर्शन जी लिखते हैं–

संत दूसरों के ताप से पिघलता है। वह करुणा से भर जाता है। इसलिए मुझे संत बड़े प्रिय लगते हैं।

–संगीतमय रामकथा पृ० 638

(25) **कामिहि[1] नारि पिआरि[2] जिमि लोभहि प्रिय जिमि दाम।**
तिमि[3] रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि[4] राम।।

–130 (ख)

(1) कामी (2) प्यारी (3) वैसे ही (4) मुझे।

तुलसीदास जी श्रीराम के अनन्य भक्त थे। इसी विचार को व्यक्त करते हुये वे कहते हैं कि जैसे कामी पुरुष को नारी और लोभी को धन प्यारा होता है। वैसे ही मुझे श्रीराम प्यारे लगते हो। यहाँ पर तुलसीदास ने राम भक्ति की पराकाष्ठा दिखाई है। कबीर जी लिखते हैं–

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम।
कबीर का गुरु संत है, संतन का गुरु नाम।।

विषयी पुरुष तो स्त्री के प्रति अनुरक्त होता है लोभी धन की आकर्षित होता है। लेकिन कबीर जी तो संत की महिमा का बखान करते हैं और संत पुरुष परमात्मा के नाम का गुणगान करते हैं।

7. रामायणप्रश्नोत्तरी

प्रश्न 1. हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कौन सा है? इसको लेखक ने कितने समय में लिखा और इसमें कितने काण्ड हैं?

उत्तर विश्वविख्यात कवि तुलसीदास द्वारा लिखित ''रामचरितमानस'' हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। उन्होंने इसका श्रीगणेश श्रीराम की जन्मभूमि अयोध्या में रामनवमी के दिन मंगलवार 30.3.1574 ई० को किया और इसकी इति श्रीराम के विवाह के दिन 25.11.1576 ई० को की। इस प्रकार इस के लिखने में 2 वर्ष, 7 मास और 26 दिन लगे। इसके 7 काण्ड हैं--1. बालकाण्ड, 2. अयोध्याकाण्ड, 3. अरण्यकाण्ड, 4. किष्किंधाकाण्ड, 5. सुन्दरकाण्ड, 6 लंकाकाण्ड, 7. उत्तरकाण्ड (प्रक्षिप्त)।

प्रश्न 2. ''रामचरितमानस'' का श्रीगणेश एवं इति किन-किन शब्दों में हुई और इन का क्या सार है ?

उत्तर ''रामचरितमानस'' का श्रीगणेश 'वर्णानाम' और इति 'मानव' शब्दों से हुई है। जिसका सार है कि सच्चा मानव कैसा होना चाहिए।

प्रश्न 3. ''रामचरितमानस'' में कितने शब्दों का प्रयोग किया गया है और यह ग्रंथ कितनी भाषाओं का संगम है?

उत्तर 16,000 शब्द और 72 भाषाएं।

नोट – संसार के किसी भी कवि ने अपने ग्रंथ में इतनी शब्दावली व भाषाओं का प्रयोग नहीं किया है।

प्रश्न 4. काण्ड का क्या अर्थ है और ''रामचरितमानस'' में विभिन्न काण्डों में कितने दोहे, छंद, चौपाइयां आदि हैं?

उत्तर काण्ड का अर्थ पर्व, सन्धि, शाखा है। इसी प्रकार रामकथा मंदाकिनी अनेक टेढ़े-मेढ़े रास्तों से निकलती है किन्तु करुणा का माधुर्य सम्पूर्ण कथा में ज्यों का त्यों बना रहता है। यह

नदी विषाद, कौतक, हास्य, आश्चर्य, भय, प्रेम, नैराश्य और तर्क से होती हुई निकलती है लेकिन इसका मुख्य अन्तर्प्रवाह है धर्म और करुणा। जिस प्रकार व्यक्ति गन्ने को निचोड़कर केवल उसका मधुर रस ही पीता है। जिस प्रकार मधुमक्खी फूलों के रूप सौन्दर्य की परवाह न करते हुए उसका मधु ही चूसती है। जिस प्रकार पतंगा गर्मी और अपनी दुर्गति की परवाह न करते हुए अग्नि की लौ के चारों ओर मंडराता है उसी प्रकार साधक को भी अन्य विषयों पर ध्यान न देते हुए ''रामचरितमानस'' में प्रवाहित करुणरस को ग्रहण करना चाहिये। ''रामचरितमानस'' के विभिन्न काण्डों में छंदों, दोहो, चौपाइयों आदि की संख्या का विवरण निम्नलिखित है–

1.	बालकाण्ड	361
2.	अयोध्याकाण्ड	326
3.	अरण्यकाण्ड	46
4.	किष्किंधाकाण्ड	30
5.	सुन्दरकांड	60
6.	लंकाकाण्ड	121
7.	उत्तरकाण्ड (प्रक्षिप्त)	130
	कुल जोड़	**1074**

प्रश्न 5. ''रामचरितमानस'' का कौनसा काण्ड सर्वश्रेष्ठ है और क्यों?

उत्तर अरण्यकाण्ड। क्योंकि इसमें श्रीराम द्वारा लक्ष्मण को दिया गया ज्ञानोपदेश और शबरी की नवधा भक्ति का दिया हुआ उपदेश ही मुख्य है। इसके अतिरिक्त इसमें श्रीराम ने कुशलता एवं दूरदर्शिता का परिचय देकर समूचे राष्ट्र को जोड़ने का महान् कार्य किया। इस काण्ड में रावण ने

सीताहरण किया और श्रीराम ने इस चुनौती को स्वीकार किया तथा स्थान-स्थान जाकर स्वयं राष्ट्र पर आई विपत्ति से लड़ने के लिये लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का संचार करके उन्हें तैयार किया। इसमें अरण्यकाण्ड का वही महत्व है जो महाभारत में 'गीता' का और भागवतपुराण में '11वें स्कन्द' का है।

प्रश्न 6. श्रीराम के बहनोई और बड़ी बहन का क्या नाम था?

उत्तर शृंगी ऋषि और बड़ी बहन का नाम शांता।

नोट -- महाराजा दशरथ ने अपनी प्रतिज्ञा अनुसार अपनी पुत्री शांता को अंग देश के राजा रोमपाद एवं वर्षिणी की दत्तक पुत्री बना दिया क्योंकि वर्षिणी कौशल्या माता की बड़ी बहन निःसन्तान थी। —सत्य रामायण पृ. 49-51

प्रश्न 7. सर्वश्री रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की पत्नियों और संतानों के क्या-क्या नाम थे?

उत्तर (1) श्रीराम जिसका अर्थ है आनन्ददायक की पत्नी का नाम सीता जिसका अर्थ है शांति और पुत्रों के नाम लव, कुश (जुड़वां भाई) और पुत्री का नाम कविता था जिसका विवाह मदुराई के राजकुमार साम्बु से हुआ था।

—सत्य रामायण पृ. 539

(2) लक्ष्मण जिसका अर्थ है सेवक, की पत्नी का नाम उर्मिला और पुत्रों का नाम अंगद और चन्द्रकेतु था।

(3) शत्रुघ्न जिसका अर्थ है शत्रुनाशक, की पत्नी का नाम श्रुतकीर्ति या श्रुतिकीर्ति था और पुत्रों का नाम सुबाहु और शत्रुघात था।

(4) भरत जिसका अर्थ है शासक, की पत्नी का नाम माण्डवी और पुत्रों का नाम पुष्कर और तक्ष था।

प्रश्न 8. ''रामचरितमानस'' में कितने वक्ताओं की कथाएँ और घाट हैं?

उत्तर इसमें चार वक्ताओं के लिए संवाद का आयोजन है जिनके लिये निम्नलिखित चार घाटों का निर्माण हुआ है ।

1. शिव पार्वतीसंवाद :– प्रथम वक्ता के रूप में शिव का नाम आता है । उनकी कथा भारत के शीशमुकु हिमालय के शिखर कैलाश पर होती है ।

2. याज्ञवल्क्य और भारद्वाजसंवाद :– दूसरे वक्ता महर्षि याज्ञवल्कय हैं जोकि हिमालय के बाद प्रयाग में कथा कहते हैं ।

3. कागभुशुण्डि गरुड़संवाद :– तीसरे वक्ता कागभुशुण्डी है जोकि भारत के दक्षिण भाग में पहाड़ पर कथा कहते हैं ।

4. तुलसीदास श्रोतागणसंवाद :– चौथे वक्ता तुलसीदास जी हैं जो घूम-घूम कर भारतवासियों को रामकथा का रसास्वादन करवाते हैं ।

वस्तुतः तुलसीदास ने यह कथा स्वयं अपने मन को शांत व सुखी करने के लिए स्वयं को ही सुनाई है । जैसे वे लिखते हैं –

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा –बालकाण्ड 3.7

वस्तुतः तुलसीदास ने अपने अंतःकरण के सुख के लिए ही यह कथा लिखी है ।

प्रश्न 9. हनुमान (महावीर, मारुति, केशरीनंदन, पवनपुत्र) के माता-पिता और भाइयों के क्या-क्या नाम थे?

उत्तर हनुमान के पिता का नाम केशरी और माता का नाम अंजना था । हनुमान के 5 भाइयों के नाम – मतिमान, श्रुतिमान, कीर्तिमान, गयमान एवं धरतीमान थे ।

–सत्यरामायण पृ० 351

प्रश्न 10. महावीर हनुमान का क्या अर्थ है? क्या हनुमान के पूँछ थी?

उत्तर महावीर वह होता है जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय पाई हो और हनु का अर्थ ठोड़ी होता है क्योंकि हनुमान जी अखण्ड ब्रह्मचारी थे और उनकी ठोड़ी कुछ लम्बी थी। इस कारण उन्हें महावीर हनुमान कहा जाता है। वस्तुतः उस काल में पूंछ वानरों का विशेष राष्ट्रीय चिह्न था जिस को वाल्मीकि रामायण में लांगूल नाम से पुकारा गया है। अतः हनुमान जी की कोई पूंछ नहीं थी।

प्रश्न 11. रावण के पिता का क्या नाम था और उनकी कितनी रानियां थीं?

उत्तर रावण के पिता का नाम विश्रवा था और उनकी निम्नलिखित तीन रानियां थीं--

(1) बिंदुमती जिसके पुत्र का नाम कुबेर था।

(2) कैकसी जिसके पुत्रों का नाम रावण और कुम्भकर्ण था और पुत्री का नाम शूर्पणखा था।

(3) राका जिसके पुत्र का नाम विभीषण और पुत्री का नाम त्रिजटा था।

प्रश्न 12. रावण के दस सिरों का क्या अर्थ है?

उत्तर रावण के दस सिर निम्नलिखित दस बुराइयों के प्रतीक थे--

1. क्रोध, 2. कपट, 3. क्रूरता, 4. कहर, 5. प्रतिकार, 6, अहंकार, 7. लोभ, 8. मोह, 9. वैर, 10. हठ।

इसके विषय में ''सत्यरामायण'' में लिखा है--

रावण के दस शीश नहीं थे। परन्तु उसको दस मस्तिष्कों का बुद्धिबल प्राप्त था। इस तथ्य का संकेत वह दस शीशों का मुकुट पहन कर देता था। उसके दस शीश, काम, क्रोध, लोभ, वासना, घमण्ड, केन्या, मानस बुद्धि, चित्त एवं अहंकार के परिचायक थे। —पृ० 395

कुछ विद्वानों का विचार है कि रावण 4 वेद 6 शास्त्र का प्रकांड पंडित था। अतः उसमें 10 सिरों के समान बुद्धि थीं

इसी कारण उसे 10 सिरों वाला कहा जाता है। परन्तु उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं थी।

प्रश्न 13. क्या सीता का जन्म पृथ्वी से हुआ था?

उत्तर नहीं, सीता की माता का नाम सुनैना धरणि था। धरणि पृथ्वी को भी कहते हैं। बस, लोगों ने भूमि से ही सीता का जन्म मान लिया और मृत्यु काल का भी ऐसा मनगढ़त कथानक बना लिया कि सीता पृथ्वी से पैदा हुई थी जो सृष्टिक्रम के विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त सीता या हल के साथ पृथ्वी पर खिंची रेखा को भी कहते हैं। इसलिये पृथ्वी से उत्पन्न होने की गलत धारणा लोगों ने बना ली।

प्रश्न 14. भरत का तप, त्याग एवं तितिक्षा (सहनशीलता) श्रीराम से अधिक क्यों थी?

उत्तर क्योंकि भरत ने मुनिवेश राम प्रेम में स्वेच्छा से स्वीकार किया था? इसके विपरीत राम ने मुनिवेश एवं तपस्वी-जीवन अपने पिता की आज्ञा से स्वीकार किया था। वस्तुतः भरत का तप, त्याग और तितिक्षा श्रीराम से कहीं अधिक थे।

प्रश्न 15. महर्षि वसिष्ठ, महर्षि अत्री, रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण की पत्नियों के क्रमशः क्या-क्या नाम थे?

उत्तर श्रीमती अरुन्धती, श्रीमती अनसुइया, श्रीमती मंदोदरी, श्रीमती ब्रजबाला, श्रीमती सुरसा।

प्रश्न 16. सीता हरण के मुख्य क्या कारण थे?

उत्तर (1) दशरथ के साथ रावण की स्थायी शत्रुता थी। उसने अनुभव किया था कि दशरथ के पिता अज के कारण ही उसके पिता विश्रवा को विशाल कौशल साम्राज्य से वंचित होना पड़ा था अन्यथा आज वह उसका स्वामी होता।

(2) दशरथ ने अनेक बार असुरों के विरुद्ध युद्ध में इन्द्र की सहायता की जिसके कारण उसे उतनी ही बार पराजय का मुख देखना पड़ा था।

(3) उसके सौतेले भाई कुबेर के प्रति प्रतिशोध की भावना ।

(4) वेदवती द्वारा उसका अपमान अभिशाप और फिर आत्महत्या ।

(5) कुबेर के पुत्र नल कुबेर तथा उसकी पत्नी रम्भा द्वारा उसका अपमान ।

(6) अन्ततः परमप्रिय बहिन शूर्पणखा का अपमान ।

--सत्य रामायण पृ० 323

प्रश्न 17. ब्रह्मचारिणी शबरी के माता-पिता एवं गुरु का क्या नाम था?

उत्तर कुसम्बी (माता) नलुश्वर (पिता) व मतंग ऋषि (गुरु)

प्रश्न 18. क्या जटायु पक्षी था?

उत्तर जटायु पक्षी नहीं था अपितु वह एक वीर योद्धा था । जटायु मरीचि वंश का काश्यप गोत्री अरुण राजा का छोटा पुत्र था । उसकी माता का नाम श्येनी, बड़े भाई का नाम सम्पाति था । उसका वर्ण ब्राह्मण, आश्रम वानप्रस्थ इष्टमित्र एवं सहपाठी महाराज दशरथ थे ।

प्रश्न 19. श्रीराम ने अपने रक्त से सीता को हनुमान के हाथ कौनसा पत्र लिखकर दिया था?

उत्तर **मेरी प्रिय सीते!**

मेरी एक-एक श्वास तुम्हारे नाम का स्मरण करती है । मेरे दिल की प्रत्येक धड़कन तुम्हारा ही नाम पुकार रही है । मेरा जीवन तुम्हारे बिना सूना है मेरा शरीर तो यहाँ है परन्तु मेरा हृदय, मेरी आत्मा तुम्हारे पास है । तुम ही मेरा जीवन हो । मेरे प्राण हो । मैं विशाल सेना लेकर तुम्हारे निकट पहुँच गया हूँ । शीघ्र ही मैं दुष्ट रावण को तथा उसके राक्षस कुल को मारकर पृथ्वी को राक्षस जाति से मुक्त कर दूँगा और फिर तुम्हें सीधा ही कौशल साम्राज्य की महारानी बनाकर सम्मानपूर्वक अयोध्या ले चलूंगा । हे प्रिय सीते! तुम चिन्ता न करो तथा शोक मुक्त हो जाओ । वियोग की घड़िया अब

समाप्त होने वाली हैं। अब अधिक चिन्ता न करो। हमारा मिलन शीघ्र होगा।

तुम्हारा राम

—सत्य रामायण पृ० 390

प्रश्न 20. अंगद के पैर जमाने का क्या अर्थ है?

उत्तर अंगद बाली का पुत्र था। वह श्रीराम का राजदूत बनकर लंका में गया था। उसे रावण ने अनेक प्रलोभन दिये थे क्योंकि वह अंगद को अपनी ओर करना चाहता था। परन्तु वह विचलित नहीं हुआ। यही उसका पैर जमाना था।

प्रश्न 21. रावण ने क्रोधित होकर किस-किस व्यक्ति को सभा से निकाला था?

रावण ने क्रोधित होकर निम्नलिखित व्यक्तियों को सभा से निकाला था—

(1) विभीषण (छोटा सौतेले भाई)
(2) शक (राजदूत)
(3) प्रहस्त (पुत्र)

प्रश्न 22. मेघनाद ने लक्ष्मण वध के लिए कौन-कौन से अस्त्रों का प्रयोग किया?

उत्तर मेघनाद ने लक्ष्मण के वध के लिए निम्नलिखित तीन अस्त्रों का प्रयोग किया था।

(1) ब्रह्मास्त्र – मेघनाद ने जब देखा कि लक्ष्मण भीषण बाणों का प्रहार कर रहा है तो उस समय उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया फिर ब्रह्मास्त्र लक्ष्मण की परिक्रमा करके वापिस चला गया।

(2) पाशुपत अस्त्र – इसके उपरांत मेघनाद ने शिवजी द्वारा दिया हुआ पाशुपत अस्त्र का प्रयोग किया। वह भी लक्ष्मण के माथे को स्पर्श करके वापिस चला गया।

(3) नारायण अस्त्र – अंत में मेघनाद ने नारायण अस्त्र का प्रयोग किया। वह भी लक्ष्मण के चारों ओर परिक्रमा करके वापिस चला गया।

प्रश्न 23. मरते समय रावण ने लक्ष्मण को क्या ज्ञान दिया था?

उत्तर जिस समय रावण मरणासन्न अवस्था में था, उस समय श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि इस संसार से नीति, राजनीति और शक्ति का महान् पंडित विदा ले रहा है, तुम उसके पास जाओ और उससे जीवन की कुछ ऐसी शिक्षा ले लो जो और कोई नहीं दे सकता। श्रीराम की बात मानकर लक्ष्मण मरणासन्न अवस्था में पड़े रावण के सिर के नजदीक जाकर खड़े हो गए।

रावण ने कुछ नहीं कहा। लक्ष्मण वापस राम के पास लौट आये। तब श्रीराम ने कहा कि यदि किसी से ज्ञान प्राप्त करना हो तो उसके चरणों के पास खड़े होना चाहिए न कि सिर की ओर। यह बात सुनकर लक्ष्मण जाकर रावण के पैरों की ओर खड़े हो गये। उस समय महापंडित रावण ने लक्ष्मण को 3 बातें बताईं जो जीवन में सफलता की कुंजी हैं।

(1) पहली बात जो रावण ने लक्ष्मण को बताई वह यह थी कि शुभ कार्य जितनी जल्दी हो कर डालना और अशुभ कार्य को जितना टाल सकते हो टाल देना चाहिए। मैं श्रीराम को पहचान न सका और उनकी शरण में आने में देरी कर दी। इसी कारण मेरी यह हालत हुई।

(2) दूसरी बात यह कि अपने शत्रु को अपने से कम शक्तिशाली नहीं समझना चाहिए, मैं यह भूल कर गया। मैंने जिन्हें साधारण वानर और भालू समझा उन्होंने मेरी पूरी सेना को नष्ट कर दिया। मैंने जब ब्रह्माजी से अमरता का वरदान मांगा था तब मनुष्य और वानर के अतिरिक्त कोई

मेरा वध न कर सके ऐसा कहा था क्योंकि मैं मनुष्य और वानर को तुच्छ समझता था। मेरी यह गलती भी थी।

(3) रावण ने लक्ष्मण को तीसरी बात यह बताई कि सामान्यतः अपने जीवन का कोई राज हो तो उसे किसी को भी नहीं बताना चाहिए, यहाँ भी मैं चूक गया क्योंकि विभीषण मेरी मृत्यु का राज जानता था। यह मेरी जीवन की सबसे बड़ी भूल थी।

प्रश्न 24. श्रीराम की सेना ने कितने दिनों मे कितना लम्बा पुल लंका पर चढ़ाई करने के लिए बाँधा था और राम-रावण युद्ध कितने दिन तक चला था?

उत्तर श्रीराम की सेना ने 5 दिन में 100 योजन लम्बे पुल का निर्माण कर लंका पर चढ़ाई करने के लिए किया था। राम एवं रावण का18 दिन तक युद्ध चला था। जैसे सत्य साईं बाबा लिखते हैं–

राम-रावण युद्ध भी स्वयं में अतुलनीय युद्ध था।
अठारह दिन तक घमासान युद्ध चलता रहा।

–राम-कथा रस-वाहिनी पृ० 614

नोट – राम और रावण के युद्ध के अंतिम दिन राम ने रावण पर ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया और रावण ने उच्च ध्वनि से दोनों हाथों को उठाते हुये कहा था–

राम रुको, रुको! मुझे मत मारो, मैं तुम्हें तुम्हारी सीता वापस कर दूँगा। परन्तु मरणासन्न रावण अशोक वाटिका की ओर दौड़ा ताकि वह अपनी मृत्यु से पूर्व सीता का वध कर सके और जिसके वियोग में राम मर जायें। परन्तु अशोक वाटिका के द्वार पर पहुँचते ही ब्रह्मास्त्र ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया और उसकी मृत्यु के अंतिम क्षण में उसके मुख से निकला 'हे राम!'।

—सत्य रामायण पृ० 502

प्रश्न 25. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का विवाह कितनी आयु में हुआ, विवाह के पश्चात् वे कितने वर्ष महलों में रहे, कितनी आयु में वे वनों में गये, कितनी आयु में उनका राज्याभिषेक हुआ और कितने वर्षों तक उन्होंने अयोध्या पर राज्य किया?

उत्तर 25 वर्ष की आयु में श्रीराम का विवाह हुआ। विवाह के पश्चात् 12 वर्ष तक वे महलों में रहे। 37 वर्ष की आयु में वे वनों को चले गये और 14 वर्ष तक वनों में रहे। 51 वर्ष की आयु में उनका राज्याभिषेक हुआ और उन्होंने 30 वर्ष 1 मास और 20 दिन तक अयोध्या पर राज्य किया।

नोट – कई पुस्तकों मे लिखा है कि श्रीराम ने 11000 वर्ष तक अयोध्या पर राज्य किया। इस का भाव है 11000 दिन अर्थात् 30 वर्ष, 1 मास और 20 दिन।

—स्वामी जगदीश्वरानंद सरस्वती कृत
मर्यादा पुरुषोत्तम राम पृ० 124

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)